ओ३म्

वैदिक-वाङ्मय में प्रयुक्त विविध स्वराङ्कन प्रकार

युधिष्ठिरो मीमांसकः

प्रकाशक–
रामलाल कपूर ट्रस्ट
रेवली, सोनीपत– ३९ (हरियाणा)
०१३०– ३२९०२७६, २१००२८५

वैदिक-वाङ्मय में प्रयुक्त विविध स्वराङ्कन-प्रकार

वैदिक स्वर मीमांसा में वैदिक ग्रन्थों वाले उदात्त आदि स्वरों का संक्षिप्त परिचय, उनका अर्थ के साथ सम्बन्ध, वेदार्थ में उनकी उपयोगिता और उनकी उपेक्षा से होने वाले दुष्परिणामों का निदर्शन हम भले प्रकार करा चुके।

स्वराङ्कन--प्रकार की विविधता—वैदिक वाङ्मय के जितने ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं उन में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों का अङ्कन (=संकेत=चिह्न) एक प्रकार का नहीं है। उनमें परस्पर अत्यधिक वैलक्षण्य है। एक ग्रन्थ में जो स्वरित का चिह्न देखा जाता है, वही दूसरे ग्रन्थ में उदात्त का चिह्न माना जाता है।[1] इसी प्रकार किसी ग्रन्थ में जो अनुदात्त का चिह्न है, वह अन्य ग्रन्थ में उदात्त का चिह्न होता है।[2] सामसंहिता का स्वराङ्कन-प्रकार सबसे विलक्षण है। उसके पदपाठ का स्वराङ्कन संहिता के स्वराङ्कन से भी पूर्णतया मेल नहीं रखता। इसीलिए वेद के विद्यार्थी को पदे-पदे सन्देह और कठिनाई उपस्थित होती है। हम उनकी इस कठिनाई को दूर करने के लिए उपलब्ध वैदिक वाङ्मय में प्रयुक्त विविध स्वराङ्कन-प्रकारों का वर्णन करते हैं।

पूर्व स्वराङ्कन परिचायक—वैदिक स्वराङ्कन का परिचय देने का प्रयत्न अनेक विद्वानों ने किया है। उन में श्री पं० पद्मनारायण आचार्य,[3] श्री पं० धारेश्वर

---

१. ऋग्वेद, अथर्ववेद में प्रयुक्त स्वरित चिह्न शीर्षस्थ रेखा | मैत्रायणीसंहिता में उदात्तस्वर के लिए प्रयुक्त होती है॥

२. ऋग्वेद आदि में अनुदात्त के लिए प्रयुक्त नीचे की सरल _ रेखा शतपथ ब्राह्मण में उदात्त का चिह्न है॥

३. देखिए "वैदिक स्वर का एक परिचय" लेख, नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १४, पृष्ठ २८३-३२२॥

शास्त्री,[1] श्री पं० सातवलेकर जी[2] और पं० विश्वबन्धु जी शास्त्री[3] प्रमुख हैं।

अशास्त्रीय और योरोपीय पद्धति का अनुसरण—इन महानुभावों ने स्वराङ्कन-परिचय की जो पद्धति अपनाई है, वह भारतीय शास्त्रानुकूल नहीं है। कतिपय अंशों में शास्त्र विरुद्ध है। श्री पं० पद्मनारायण और श्री पं० विश्वबन्धु जी शास्त्री का परिचय-प्रकार योरोपीय पद्धति पर आश्रित है।

शास्त्रीय पद्धति के परित्याग से हानि—शास्त्रीय पद्धति के परित्याग से अथवा योरोपीय पद्धति के आश्रयण करने से साधारण विषय न केवल क्लिष्ट तथा सन्देहयुक्त हो जाता है, अपितु उसके आधार पर वेद का सूक्ष्मार्थ भी नष्ट हो जाता है। यथा—

१—श्री पं० विश्वबन्धु जी ने स्वरित के दो भेद किये हैं—अनुदात्तभूमि और उदात्तभूमि। उदात्त से परे जो अनुदात्त स्वरित हो जाता है, उसे अनुदात्तभूमि कहा गया है। इससे भिन्न स्वरितों के लिए उदात्तभूमि शब्द का प्रयोग किया है। शास्त्रीय प्रक्रियानुसार जो जात्य, क्षैप्र और प्रश्लेष स्वरित हैं, उन्हें 'उदात्तभूमि' संज्ञा दी है। उदात्त के उत्तरवर्ती अनुदात्त के स्वरित हो जाने पर उसे 'अनुदात्तभूमि' कहना युक्त कहा जा सकता है, क्योंकि उसकी भूमि वस्तुतः अनुदात्त है। परन्तु उन्होंने जिन जात्य, क्षैप्र और प्रश्लेष स्वरितों को उदात्तभूमि कहा है, उसमें से कोई भी स्वरित ऐसा नहीं है जो मूलतः उदात्त हो और कारणवश उसे स्वरित हो जाता हो, क्षैप्र स्वरित में उदात्त वर्ण के स्थान पर यणादेश होता है और उससे आगे जो अनुदात्त होता है, उसे स्वरित हो जाता है। यथा—तुन्वो अ॒प्स्व॑न्तः। अतः क्षैप्र स्वरित भी अनुदात्त के स्थान पर ही होता है, अतः वह अनुदात्तभूमि तो कहा जा सकता है, परन्तु उसे उदात्तभूमि नहीं कह सकते। यदि कहा जाए कि उदात्त-स्थानीय यण् स्वरितत्व में कारण है, अतः उसे उदात्तभूमि संज्ञा दी, तो अनुदात्तभूमि स्वरित में भी

---

१. श्री पं० धारेश्वर शास्त्री ने साम संबन्धी स्वराङ्कन का निर्देश ८ सूत्रों से दर्शाया है। हमने उनके सूत्र छात्रावस्था में किसी ग्रन्थ से प्रतिलिपि किए थे। ग्रन्थ का नाम इस समय स्मरण नहीं है॥

२. श्री पण्डित जी ने स्वप्रकाशित सामवेद, मैत्रायणीसंहिता आदि की भूमिका में कतिपय ग्रन्थों का स्वराङ्कन दर्शाया है॥

३. 'वैदिक पदानुक्रमकोष', संहिता भाग के प्रथम खण्ड की भूमिका में॥

तो पूर्ववर्ती उदात्त ही कारण होता है, अतः उसे भी उदात्तभूमि कहना चाहिए। प्रश्लेष स्वरित में उदात्त और अनुदात्त दोनों के सम्मिश्रण से स्वरित होता है, अतः इसे भी उदात्तभूमि नहीं कह सकते। क्व, शरव्यां, कन्यां आदि में श्रुत जात्य स्वरित को भी उदात्तभूमि संज्ञा देना चिन्त्य है। क्योंकि यहां शास्त्रीय पद्धति के अनुसार न क्षैप्रसन्धि है और न प्रश्लेष। यहां तो अत् और यत् प्रत्यय के तित् होने से स्वभावतः स्वरितत्व है[1]। सम्भवतः श्री पं० विश्वबन्धु जी ने यहां क्रमशः कु+अ, शरवी+आ, कनी+आ इस प्रकार सन्धि की कल्पना की होगी।

२—श्री पद्मनारायण आचार्य ने जात्य, क्षैप्र और प्रश्लेष स्वरित के लिए "स्वतन्त्र स्वरित" शब्द का व्यवहार किया है। जात्य को स्वतन्त्र कहना तो युक्त है, परन्तु क्षैप्र और प्रश्लेष सन्धियों के निमित्त से होने वाले स्वरितों (जिनमें उदात्त वर्ण ही कारण बनता है) को स्वतन्त्र स्वरित का नाम देना यथार्थता से आखें मूंदना है।

इस प्रकार शास्त्रीय पद्धति का परित्याग करके श्री पं० विश्वबन्धु द्वारा कल्पित 'अनुदात्तभूमि' और 'उदात्तभूमि' तथा श्री पद्मनारायण आचार्य द्वारा कल्पित 'परतन्त्र स्वरित' और 'स्वतन्त्र स्वरित' नामों की यथार्थ व्याख्या न केवल क्लिष्ट ही है, अपितु यथार्थता से बहुत दूर है।

वस्तुतः शास्त्रपरिष्कृत मार्ग का परित्याग करने से मनुष्य पदे-पदे भूल करता है।

३—श्री धारेश्वर शास्त्री ने सामस्वर का निर्देश करते हुए लिखा है—

उदात्तः स्वरितो विरामे ॥

अर्थात्—विराम (अवसान) में उदात्त को स्वरित हो जाता है।[2]

उदात्त और स्वरित दो पृथक् स्वर हैं। स्वरों में उदात्त स्वर मुख्य होता है। अर्थ की दृष्टि से उदात्त स्वर का ही महत्त्व है। वह पद के प्रकृति अथवा प्रत्ययरूपी जिस अंश में वर्तमान रहता है, उसी अंश के अर्थ की प्रधानता होती है यह हम पूर्व (पृष्ठ ६५--६७) सप्रमाण विस्तारपूर्वक दर्शा चुके हैं। इसी दृष्टि से धारेश्वर

---

१. 'तित् स्वरितम्'। अष्टा० ६।१।१८५॥

२. भाषिक-सूत्र-नामक परिशिष्ट में भी ऐसी ही अशास्त्रीय पद्धति का आश्रयण किया है। वहां अनुदात्त और स्वरित को उदात्त तथा उदात्त को अनुदात्त कहा है॥

शास्त्री द्वारा स्वर को स्वरित बना देने का अभिप्राय है प्रधान अर्थ को गौण बनना। यदि वेद में उदात्त स्वर से प्रतीयमान मुख्य अर्थ को गौण बना दिया जाय तो वेद का सूक्ष्म अर्थ नष्ट हो जाता है। इसलिए उदात्त को स्वरित कहना शास्त्रविरुद्ध होने से सर्वथा त्याज्य है।

अब हम शास्त्रीय पद्धति के अनुसार वैदिक वाङ्मय में प्रयुक्त विविध स्वराङ्कनों का वर्णन करते हैं—

अथात आम्नाय-स्वराङ्कन-प्रकारः ॥१॥

अब हम आम्नाय=वैदिक वाङ्मय में प्रयुक्त उदात्त आदि स्वरों के विविध अङ्कन प्रकारों का वर्णन करेंगे।

सिद्धवत् पाणिनीयः ।२॥

इस स्वराङ्कन-प्रकार के विधान में भगवान् पाणिनि द्वारा निर्दिष्ट पद और संहिता-स्वर सिद्धवत् माना जाएगा। अर्थात् आचार्य पाणिनि ने अपने शब्दानुशासन में जिस पद का जो स्वर दर्शाया है तथा संहिता में जो स्वरित, एकश्रुति और अनुदात्तत्तर आदि विकार कहे हैं, उनको उसी प्रकार स्वीकार करके स्वराङ्कन-प्रकार का निर्देश किया जाएगा।

आम्नायो द्विविधः, संहिताब्राह्मणभेदात् ॥३॥

वह आम्नाय संहिता और ब्राह्मण के भेद से दो प्रकार का है।

संहिता नाम से विख्यात ग्रन्थ भी दो प्रकार के हैं, एक वे हैं जिनमें केवल मन्त्र-मात्र हैं, यथा—ऋक्संहिता, माध्यन्दिन संहिता[1] आदि। दूसरे वे हैं जिनमें मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का सम्मिश्रण हैं, यथा—तैत्तिरीय संहिता, मैत्रायणी संहिता।

आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थों के ही परिशिष्ट भाग है। ईश को छोड़कर शेष प्राचीन उपनिषदें उन आरण्यकों के ही अन्तर्गत है। अतः आरण्यक और उपनिषदों की पृथक् गणना नहीं की।

---

१. यजुःसर्वानुक्रम में माध्यन्दिन संहिता के 'ब्राह्मण' नाम से दर्शाए भाग भी प्राचीन आचार्यों के मत से मन्त्रात्मक ही है। इनकी विशद मीमांसा के लिए वैदिक सिद्धान्त मीमांसा में हमारा 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्—इत्यत्र कश्चिदभिनवो विचारः' निबन्ध देखना चाहिए। संस्कृत के पश्चात् हिन्दी में भी छपा है।

संहिता द्विविधा, निर्भुजप्रतृणभेदात् ॥४॥

निर्भुज और प्रतृण भेद से संहिता दो प्रकार की होती है।

निर्भुज शब्द मन्त्र संहिता का वाचक है और प्रतृण पद-संहिता का। ऐतरेय आरण्यक में कहा है—

यद्धि सन्धिं विवर्तयति तन्निर्भुजस्य रूपम्, अथ यच्छुद्धे अक्षरे अभिव्याहरति तत् प्रतृणस्य ॥३।१।३॥

इसकी व्याख्या करते हुए सायण ने लिखा है—जो उच्चारण सन्धि अर्थात् पूर्व उत्तर के दोनों पदों के अत्यन्त सन्निकर्ष को विशेषरूप से सम्पादित करता है, वह निर्भुज का रूप है। निर्दिष्ट किये गये हैं भुजा के समान पूर्वपर-वर्ती शब्द जिस संहिता-रूप उच्चारण में, वह उच्चारण निर्भुज कहाता है। 'अथ' शब्द पूर्व से विलक्षणता बताने के लिए है जो उच्चारण पूर्व तथा परवर्ती दोनों अक्षरों को शुद्ध=विकार-रहित=स्पष्ट रखता है, वह 'प्रतृण' कहाता है।.....प्रतृण शब्द से विच्छिन्न (स्वतन्त्र) शब्द का निर्देश किया जाता है।[1]

क्रम-जटा-घनादयः पदमूलाः ।५॥

वैदिक विद्वानों द्वारा पठ्यमान मन्त्रों के क्रम, जटा, घन आदि पाठ पदमूलक हैं। अर्थात् पदपाठ को आश्रय मानकर ही क्रम आदि पाठ उपपन्न होते हैं।

यद्यपि क्रमपाठ पदमूलक है, पुनरपि उसमें दो-दो पदों का सहपाठ होने से पद और संहिता दोनों के सम्मिलित स्वरों का प्रयोग होता है।

वेद के जटा, माला, शिखा, रेखा, ध्वज, दण्ड, रथ, और घन पाठ यद्यपि

---

१. यद् उच्चारणं सन्धि पदयोरुभयोरत्यन्तसन्निकर्षं विवर्तयति विशेषेण सम्पादयति तदुच्चारणं निर्भुजशब्दार्थस्य स्वरूपम्। निर्दिष्टौ भुजसदृशौ पूर्वोत्तरशब्दौ यस्मिन् संहितारूपे तदुच्चारणं निर्भुजम्। अथ शब्दः पूर्ववैलक्षण्यार्थः। शुद्धे विकार-रहिते पूर्वोत्तरे उभे अक्षरे अभिव्याहरति स्पष्टमुच्चारयतीति यदस्ति तत् प्रतृणशब्दाभिधेयस्य पदच्छेदस्य स्वरूपम्। ...प्रतृणशब्देन विच्छिन्नं पदमभिधीयते। ऐ० आ० सायणभाष्य ३।१।३॥

क्रम-मूलक माने गये हैं[1], पुनरपि क्रमपाठ के पदमूलक होने से ये भी परम्परा से पद मूलक ही हैं। जटा आदि को अष्ट-विकृति भी कहा जाता है।

इन आठ विकृतियों में जटा और दण्ड प्रधान हैं। जटा के अनुसार शिखापाठ होता है और दण्ड के अनुसार माला, लेखा, ध्वज और रथ। घन पाठ जटा और दण्ड उभयानुसारी है[2]।

क्रमपाठ भी क्रमसंहिता के नाम से प्रसिद्ध है। उव्वट ऋक्प्रातिशाख्य २।२ की व्याख्या में लिखता है—

सा च द्विविधा संहिता। आर्षी क्रम-संहिता च। आर्षी-अयं वेवाय जन्मने (ऋ० १।०२।१)। क्रमसंहिता—पर्जन्याय प्र, प्रणायत, गायत विवः (ऋ० क्रम ७।१०।२।१)।

चरणव्यूह के व्याख्याकार महिदास ने इन आर्षी और क्रमसंहिता का नाम क्रमशः रूढा और योगा लिखा है।[3]

पञ्चपटलिका ५।१९ में आचार्य-संहिता का निर्देश मिलता है।[4] कौशिक सूत्र ८।२१ पर टीका करते हुए दारिल ने इनके क्रमशः आर्षी संहिता और आचार्य संहिता दो भेद दर्शाए हैं।[5]

हम यहां केवल मन्त्र संहिता और पद-संहिता के स्वरों का ही वर्णन करेंगे।

निर्भुजसंहितायास्तावत् ॥६॥

निर्भुज (मन्त्र-संहिता) और प्रतृण (पद-पाठ) संहिताओं में पहले निर्भुज संहिता के स्वरों का निर्देश करेंगे।

---

१. जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घनः। अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः। व्याडिविरचित विकृतिवल्ली। चरणव्यूह की महिदासकृतटीका १।५ में उदधृत॥

२. आसां मध्ये जटादण्डयोः प्राधान्यम्। तत्कथम्? जटानुसारिणी शिखा। दण्डानुसारिणी माला लेखा ध्वजो रथश्च घनस्तूभयानुसारित्वात्। महिदासकृत चरणव्यूह टीका १।५॥

३. सा द्विविधा, रूढा योगा च। रूढा यथा—अग्निमीळे पुरोहितम्, इति। योगा यथा—अग्निमीळे, ईळे पुरोहितम्, इति॥

४. आचार्यसंहितायां तु पर्यायाणामतः परम्।...॥

५. पुनरुक्तप्रयोगः पञ्चपटलिकायां कथितः। आर्षीसंहितायाः कर्मयोगात्, आचार्यसंहिताऽभ्यासार्था॥

तत्राप्यृग्वेदस्य ॥७॥

निर्भुज संहिताओं में भी पहले ऋग्वेद के स्वराङ्कन-प्रकार का वर्णन किया जाता है।

अधोरेखयाऽनुदात्तः ॥८॥

अक्षर[1] के नीचे पड़ी रेखा से अनुदात्त[2] स्वर का निर्देश किया जाता है। यथा—

अग्निमीळे पुरोहितम्। ऋ० १।१।१॥

यहां 'अ' और 'पु' के नीचे पड़ी रेखा का निर्देश होने से ये दोनों अनुदात्त हैं। ऐसा ही सर्वत्र समझें।

विशेष ध्यातव्य यद्यपि स्वर-शास्त्र के अनुसार उदात्त आदि स्वरधर्म अचों (स्वरों) का ही है, तथापि यहां स्वर निर्देश प्रकरण मे चिह्नों के ठीक ज्ञान के लिए व्यञ्जन-विशिष्ट अचों (स्वरों) का उल्लेख किया है। उनके निर्देश में अभिप्राय तत्तत् अचों से ही है, व्यञ्जनों से नहीं।

ऊर्ध्वरेखया स्वरितः ॥९॥

अक्षर के ऊपर खड़ी रेखा से स्वरित का निर्देश किया जाता है। यथा—

अग्निमीळे पुरोहितम्। ऋ० १।१।१॥

यहां 'मी' और 'हि' के ऊपर खड़ी रेखा का चिह्न होने से ये दोनों स्वरित हैं।

स्वरितात् परोऽनङ्कित एकश्रुतिः ॥१०॥

स्वरित से परे जिस या जिन अक्षरों पर कोई चिह्न न हो, उन्हें एकश्रुति[3] स्वर वाला समझना चाहिए। यथा—

---

१. स्वरशास्त्र में अक्षर शब्द शुद्ध स्वर = अच् अथवा व्यञ्जनसहित स्वर का वाचक होता है। देखो-स्वरोऽक्षरम्, व्यञ्जनसहितं च। तु० वाज० प्राति० १।९९-१०१।

२. उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और एकश्रुति स्वरों के विषय में दूसरे अध्याय में विस्तार से लिख चुके हैं।

३. प्रचय भी एकश्रुति का ही नामान्तर है, यह हम पूर्व द्वितीय अध्याय में लिख चुके हैं।

होतारं रत्नधातमम् । ऋ० १।१।१॥

यहां स्वरित 'ता' से परे 'रं' और 'र' दो अक्षरों पर ऊपर नीचे कोई चिह्न नहीं है। इसी प्रकार स्वरित 'त' से परे 'म' पर कोई चिह्न नहीं है। अतः इस उदाहरण में 'रं'-र-म' ये तीन अक्षर एकश्रुति स्वर वाले हैं, ऐसा समझना चाहिए।

एकश्रुति स्वर के विषय में स्वर मीमांसा पृष्ठ २६ में लिख चुके हैं कि एकश्रुति में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन तीनों उच्चारण-धर्मों का तिरोभाव होता है।[1] कई आचार्य एकश्रुति को उदात्तसम और दूसरे अनुदात्तसम मानते हैं।[2] हमारे विचार में एकश्रुति का उच्चारण अनुदात्त के समान होना चाहिए, क्योंकि एकश्रुति सदा स्वरित के अनन्तर ही होती है और स्वरित के उत्तर भाग में अनुदात्त धर्म रहता है। अतः स्वरित से परे विहित एकश्रुति का उच्चारण अनुदात्तवत् होना अधिक युक्त है।

अपूर्वोऽनुदात्तपूर्वो वाऽनङ्कित उदात्तः ॥११॥

जिससे पूर्व कोई स्वर न हो अथवा अनुदात्तपूर्व में हो, ऐसा चिह्नरहित अक्षर उदात्त होता है। यथा—

अपूर्व—अग्ने यं यज्ञमध्वरम् । ऋ० १।१।४॥

यहां सर्वादि में वर्तमान विना स्वर चिह्न वाला 'अ' अक्षर उदात्त है।

अनुदात्तपूर्व—पूर्व उदाहरण में ही अनुदात्त 'ग्ने' से अगला विना चिह्न का 'यं' उदात्त है। इसी प्रकार 'ज्ञ' और 'र' भी।

सकम्पजात्यक्षैप्रप्रश्लेषाभिनिहितेभ्यश्च ॥१२॥

इस सूत्र में 'अनङ्कित उदात्तः' पदों की पूर्व सूत्र से अनुवृत्ति है। कम्पयुक्त जात्य, क्षैप्र, प्रश्लेष और अभिनिहित स्वरित[3] से परे भी जो अनङ्कित अक्षर होता है उसे उदात्त समझना चाहिए। 'सकम्प' का ग्रहण इसलिए किया है कि जहां कम्प न हो वहां पूर्वसूत्र (संख्या १०) से एकश्रुति स्वर होगा। (द्र० ऋ०

---

१. स्वराणामुदात्तादीनामविभागो भेदस्तिरोधानमेकश्रुतिः। काशिका १।२।३३॥

२. महाभाष्य १।२।३३—उदात्ता...अनुदात्ता च...॥

३. इन स्वरितों की विशद व्याख्या तृतीय अध्याय में कर चुके हैं॥

१।८५।७॥१०।९१।१५ आदि)। कम्प का विधान अगले सूत्रों में किया जाएगा। इसलिए इस सूत्र के उदाहरण भी वे ही होंगे जो सूत्र संख्या १४, १५ में लिखे जाएंगे।

उदात्तस्वरितपरा जात्यक्षैप्रप्रश्लेषाभिनिहिताः कम्पन्ते ॥१३॥

उदात्त और स्वरित परे रहने पर जात्य, क्षैप्र, प्रश्लेष और अभिनिहित स्वरित का उच्चारण कम्प से होता है।

'स्वरित' ग्रहण स्पष्टार्थ है क्योंकि स्वरित में भी आदि की आधी मात्रा उदात्त होती है। अतः उदात्तपरा इतने से कार्य चल सकता है। यहां केवल जात्य स्वरित परे ही कम्प होता हैं, अन्य स्वरितों की तादृश स्थिति न होने से।

स्वरित के आदि की आधी मात्रा उदात्त होती है[1] और उससे परे शेष मात्रा अनुदात्त। उस अनुदात्त से परे जब उदात्त का उच्चारण करना होता है, तब दो उदात्तों के मध्य में अनुदात्त उच्चारण में असुविधा होना स्वाभाविक है। इसलिए उदात्त परे रहने पर, जात्य आदि स्वरितों के अन्त्य अनुदात्त भाग के उच्चारण में स्वभावतः कांस्य पात्र[2] के समान कम्पन होता है।

स्वरित के आरम्भ की आधी मात्रा उदात्त होने से उससे पूर्ववर्ती स्वरित की अनुदात्त मात्रा भी दो उदात्त मात्राओं के मध्य में प्रयुक्त होने से उदात्त पर के समान ही कम्प को प्राप्त होती है।

इसी सूत्र के अभिप्रायः को ऋक्प्रातिशाख्य में इस प्रकार दर्शाया है—

जात्योऽभिनिहितश्चैव क्षैप्रः प्रश्लिष्ट एव च।
एते स्वराः प्रकम्पन्ते यत्रोच्चस्वरितोदयाः ॥३।३४॥

यतः अन्य स्वरितों से परे उदात्त और स्वरित स्वर देखा नहीं जाता, अतः जात्य क्षैप्र, प्रश्लिष्ट और अभिनिहित इन चारों के कम्प का विधान किया है।

---

१. 'तस्यादित एदात्तमर्धह्रस्वम्'। अष्टा० १।२।३२॥ मात्रचो लोपोऽत्र द्रष्टव्यः प्रर्धह्रस्वमात्रम्। महा० १।२।३२॥

२. जैसे कांसे के पात्र को एक बार बजाने से कुछ काल तक ध्वनि निकलती हती है, उसे ही कम्प कहते हैं॥

इस कम्प की मात्रा कितनी होती है और उसका निर्देश कैसे किया जाता है, इसका विधान अगले सूत्रों से दर्शाते हैं—

तत्र ह्रस्व ऊर्ध्वाधोरेखाविशिष्टेनैकाङ्केन ॥१४॥

कम्प से उच्चरित ह्रस्व स्वरित वर्ण से परे एक संख्या का निर्देश होता है और उसके उपर स्वरित और नीचे अनुदात्त का चिह्न किया जाता है। यथा—

जात्य—उ॒क्थ्य१॒ वचो॑ य॒तस्रु॑चा। ऋ० १।८३।८॥

क्षैप्र—स॒ध्य१॒ङ्नामं भ॒द्रम्। ऋ० १।१०८।३॥

प्रश्लिष्ट, अभिनिहित—प्रश्लिष्ट और अभिनिहित स्वरित कभी एकमात्रिक (ह्रस्व) नहीं होते, इसलिए उनका उदाहरण यहां नहीं दिया।

यहां 'क्थ्य' जात्य स्वरित और 'ध्य' क्षैप्र स्वरित है। उससे परे क्रमशः विना चिह्न के 'व' और 'ना' अक्षर उदात्त हैं।

विशेष—हम पूर्व लिख चुके हैं कि ह्रस्व, दीर्घ और प्लुतसंज्ञक सभी स्वरितों में आदि की आधी मात्रा उदात्त होती है, शेष क्रमशः आधी, डेढ और ढाई मात्रा अनुदात्त। ह्रस्व स्वरित में आधी मात्रा उदात्त और आधी अनुदात्त अर्थात् दो सम भागों में एक उदात्त और एक अनुदात्त होता है। इस कारण जहां ह्रस्व के अनुदात्त भाग में कम्प दर्शाना होता है वहां एक संख्या के ऊपर स्वरित और नीचे अनुदात्त का चिह्न १ दर्शाया जाता है। इसका भाव यह है कि यहां स्वरित का एक भाग अनुदात्त है। दीर्घ स्वरित में तीन संख्या के ऊपर स्वरित और नीचे अनुदात्त का चिह्न लगाया जाता है। (देखो अगला सूत्र)। इसका अभिप्राय यह है कि यहां दो मात्रा में आधी मात्रा अर्थात् १ भाग उदात्त है और डेढ मात्रा अर्थात् ३ भाग अनुदात्त है।

श्री प० विश्वबन्धु जी की भूल—श्री पं० विश्वबन्धु जी ने संहितापदानुक्रम-कोश के आरम्भ में (पृष्ठ cxix, संख्या १) लिखा है कि ह्रस्व स्वरित से परे ½ और दीर्घ स्वरित से परे ⅓ का अंकन उत्तरवर्ती उदात्त और एकश्रुति के भेद के स्पष्टीकरण के लिए है। अर्थात् यहां स्वरित के आगे ½ अथवा ⅓ से परे विना चिह्न का स्वर हो तो वह उदात्त होगा और विना ½ अथवा ⅓ से अङ्कित स्वरित से परे विना चिह्न का स्वर होगा तो वह एकश्रुति होगा।

वस्तुतः १ और ३ का यही प्रयोजन होता तो दो प्रकार के भेद की आवश्यकता नहीं थी। विदित होता है कि उन्हें १ और ३ संकेत सकम्प स्वरित के कम्पित भागांश के बोधक हैं, इसका ज्ञान ही नहीं था। इतना ही नहीं यदि १ और ३ संकेत स्वरित से परे उदात्त और एकश्रुति के भेद के बोधक होते, तो स्वरित परे रहने पर १ और ३ का संकेत न होता। परन्तु स्वरित परे रहने पर भी जात्यादि स्वरितों के आगे १ और ३ संकेत उपलब्ध होते हैं। यथा—

शतचक्रं यो ३ ह्यों वर्तनिः। ऋ० १०।१४४।४॥

कम्प युक्त प्लुत स्वरित का प्रयोग कहीं नहीं होता, अतः उसका यहां विचार नहीं किया गया।

दीर्घोऽधोरेखया त्र्यङ्केनोर्ध्वाधोरेखाविशिष्टेन च ॥१५॥

कम्प से उच्चरित दीर्घ स्वरित वर्ण के नीचे अनुदात्त का चिह्न और उसके आगे ३ तीन संख्या के ऊपर स्वरित और नीचे अनुदात्त का चिह्न होता है यथा—

उदात्त परक—

जात्य—रुभ्यो ३ वयस्वतः। ऋ० २।२४।१५॥

क्षैप्र—विक्ष्वा ३ योः (विक्षु+आयोः)। ऋ० २।४।२॥

प्रश्लिष्ट—अभी ३ दम्। ऋ० १०।४८।७॥

अभिनिहित—प्रथमं वां वृणानो ३ ऽयं सोमः (वृणानः+अयं)। ऋ० १।१०८।६॥

यहां स्वरित वर्ण 'भ्यो' 'क्ष्वा' 'भी' 'नो' के नीचे अनुदात्त का चिह्न लगाया जाता है और इनके आगे ३ पर स्वरित और अनुदात्त दोनों का। इन चारों स्वरित अक्षरों से परे क्रमशः 'व' 'ग्नोः' 'द' 'यं' अक्षर उदात्त हैं।

स्वरित परक—

शतचक्रं यो ३ ह्यों वर्तनिः। ऋ० १०।१४४।४॥

यह अभिनिहित स्वरित का (यः+अह्यः) स्वरित रहने पर उदाहरण है। इसी प्रकार जात्यादि स्वरितों के स्वरित परक उदाहरण भी मृग्य हैं।

विशेष—स्वर-शास्त्र के न जानने वाले अनेक व्यक्ति जात्यादि स्वरितों से आगे प्रयुज्यमान ३ अंक को प्लुत का चिह्न मानकर ऐसे स्थानों पर प्लुत उच्चारण करते हैं, वह शास्त्र-विपरीत है। जहां प्लुत उच्चारण अभीष्ट होता है, वहां ३ संख्या शुद्ध लिखी जाती है, उस पर अन्य कोई चिह्न नहीं होता। यथा—

ओ३ङ्क्रतो स्मर (माध्य० सं० ४०।१५) ॥

दीर्घ जात्यादि के आगे संकेत्यमान ३ संख्या का अभिप्राय पूर्वसूत्र की व्याख्या के अन्त में दर्शा चुके हैं।

अथ कश्मीराचिकस्वरः ॥१६॥

अब कश्मीर देश में व्यवहृत ऋग्वेद-सम्बन्धी स्वराङ्कन का प्रकार लिखते हैं।

उदात्त ऊर्ध्वरेखया ॥ १७ ॥

काश्मीर देश के ऋग्वेद-संबन्धी हस्तलेखों में उदात्त स्वर का निर्देश ऊपर खड़ी रेखा से किया जाता है। यथा—

अहं यशस्विनां यशो विश्वा रूपाण्या ददे।
ऋ० खिल[2] १.१।१॥

इनमें ऊर्ध्वरेखाङ्कित 'हं-य-स्वि-य-वि-पा-ण्या अक्षर' उदात्त हैं।

विशेष—पूना मुद्रित पाठ में 'यशस्विनां' पद में यु और स्वि दोनों पर उदात्त चिह्न है वह चिन्त्य है। यशस्विन् शब्द में विन् प्रत्यय स्वर से उदात्त होने से यु अनुदात्त होता है। द्र० अथर्व०—यशस्विनम् (६।३९।१) यशस्वितः (१९।५६।६)।

---

१. मुद्रित पाठ 'ओ३म् क्रतो' है। परन्तु संहिता पाठ में मकार को अनुस्वार होकर परसवर्ण होगा। अतः शुद्ध पाठ वही उच्चरित होगा जो हमने ऊपर छापा है। माध्यन्दिन संहिता के साम्प्रदायिक पाठ में पदान्त अपदान्त सर्वत्र नित्य परसवर्ण होता है। अपदान्त में परसवर्ण और द्विवचन रहित पाठ की कल्पना योरोपीय संपादक बेवर की देन है। कतिपय भारतीय प्रकाशकों ने भी उसी का अन्धानुकरण किया।

२. कश्मीर देश की ऋग्वेद संहिता की कोई पुस्तक साक्षात् देखने में नहीं आयी। ऋग्वेद खिल का जो स्वर पाठ सायणभाष्य पूना संस्करण के अन्त में छपा है, वह कश्मीर पाठानुसार है, ऐसा सम्पादकों का कथन है॥

जात्यक्षैप्रप्रश्लिष्टाभिनिहिता ऊर्ध्वं वक्ररेखया ॥१८॥

कश्मीर पाठ में जात्य, क्षैप्र, प्रश्लिष्ट और अभिनिहित स्वरित वर्ण के ऊपर वक्र रेखा का निर्देश किया जाता है।[1] यथा—

जात्य—हंवन्तं मेघान् वृक्ये । खिल १।१२।७॥

क्षैप्र—संमधान्वारुवहन् स्वः । खिल १।११।४॥

प्रश्लिष्ट और अभिनिहित के उदाहरण मृग्य हैं।

उदात्तपराः कम्पन्ते ॥१९॥

उदात्त अक्षर परे रहने पर जात्य, क्षैप्र और अभिनिहित स्वरित कम्प को प्राप्त होते हैं।

ततः परमधोरेखया त्र्यङ्कः स्वयं चिह्नरहितः ॥२०॥

कम्प को प्राप्त जात्य, क्षैप्र और अभिनिहित स्वरित से परे ३ का अङ्क लिखा जाता है और उसके नीचे पड़ी रेखा लगाई जाती है।[3] परन्तु स्वयं स्वरित पर कोई चिह्न नहीं रहता।

---

१. पूना के वैदिक संशोधन मण्डल से प्रकाशित 'ऋग्वेद' सायणभाष्य भाग ४ के अन्त में खिलपाठ (कश्मीर-पाठानुसार) छपा है। उसके सम्पादक महोदय ने खिलपाठ से पूर्व भूमिका के पृष्ठ ९०९ पर लिखा है कि इस पाठ में केवल जात्य स्वरित पर ही चिह्न उपलब्ध होता है। यह उनका भ्रम है॥

२. स्वः पद 'सु+अर्' से बना है। अतः यहां क्षैप्र सन्धि होने से यह क्षैप्र स्वरित है। कुछ लोग 'स्वः' को अव्युत्पन्न मानकर जात्य स्वरित कहते हैं। यह अयुक्त है, क्यों कि शाखान्तर में 'स्वः' का 'सुवः' पाठ मिलता है (देखो। तैत्तिरीय संहिता)। 'सु+अर्' में यण् सन्धि होकर 'स्वः' और 'त्रियम्बकं' आदि के समान यण्-व्यवधान सन्धि होकर 'सुवः' प्रयोग बनता है। देखो, हमारा 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास' भाग १ अ० १॥

३. उक्त सायण-भाष्य के साथ प्रकाशित खिल-पाठ के सम्पादक ने पृष्ठ ९०९ पर लिखा है कि उदात्त या स्वरित परे होने पर जात्य स्वरित का ३ संख्या से कम्प दर्शाया जाता है' यह लेख भी पूर्णतया ठीक नहीं है। क्षैप्र और अभिनिहित स्वरित का भी ३ से कम्प बताया जाता है॥

विशेष—ऋग्वेद के पूर्वनिर्दिष्ट स्वर (सूत्र १४-१५) में कम्प को प्राप्त ह्रस्व स्वरित से परे १ संख्या और दीर्घ से परे ३ संख्या का निर्देश होता है, परन्तु खिल-पाठ के कश्मीर-पाठ में ह्रस्व, दीर्घ दोनों से परे ३ संख्या का ही निर्देश उपलब्ध होता है। कारण चिन्त्य है।

जात्य—आपो न वज्रिन्नन्वोक्यं३सरः। खिल ३।१।३॥

क्षैप्र—संन्ति ह्य३यं आशिष। खिल ३।६।७॥

यो जाम्या३ः प्रत्यमदद्यः। खिल ५।१२।२॥

अभिनिहित—परे ह्यीऽतो ३ घ्न्यास्ये। खिल ४।५।३२॥

विशेष—अन्तिम उदाहरण का पूना मुद्रित पाठ 'परेहितो' ३_ घ्न्यास्ये' है। जर्मन संस्करण में 'परेहीतो ३_ घ्न्यास्ये' पाठ है। ये दोनों पाठ अशुद्ध हैं, क्योंकि इनमें 'तो' अक्षर पर _ उदात्त चिह्न है। उसके आगे कम्पद्योतक ३_ का निर्देश नहीं हो सकता। ३ का निर्देश होने से स्पष्ट है कि उससे पूर्व का 'तो' अक्षर स्वरित है। यह मंत्र पाठभेद से अथर्व० १०।१।२० में भी उपलब्ध होता है। हमने उसकी सहायता से इस पाठ का शोधन किया है।

एक अशुद्ध पाठ—पूना मुद्रित खिल पाठ में एक मन्त्र का पाठ इस प्रकार छपा है—

मन्थां ३ परिस्रुतम्। खिल ५।१०।३॥

यहां मन्थां में म स्पष्ट उदात्त है। अथर्व २०।१२६।९ में भी यही पाठ है (राथ ह्विटनी का पाठ मन्थं है) यहां भी म उदात्त है। सामान्य थां स्वरित है। अतः खिल पाठ में उससे पर ३ का पाठ चिन्त्य प्रतीत होता है।

शेषा अनङ्कितः ॥ २१ ॥

शेषस्वर = अनुदात्त, एकश्रुति और सामान्य (उदात्त परे विहित) स्वरित पर कोई चिह्न नहीं होता।

विशेष—ऋग्वेद के खिल पाठ का कश्मीर-पाठ "वैदिक संशोधन मण्डल पूना" से प्रकाशित सायणभाष्य के चतुर्थ भाग के अन्त में छपा है। उसमें उपर्युक्त प्रकार से स्वरों का निर्देश उपलब्ध होता है। यह स्वर निर्देश-प्रकार कुछ भेद से काठक

तथा मैत्रायणी संहिता में भी उपलब्ध होता है। उसका निर्देश यथास्थान किया जाएगा। यह भी ध्यान रहे कि ऋग्वेद के खिलपाठ के उक्त संस्करण में स्वर-चिह्न बहुत अशुद्ध लगे हुए हैं।

अथ यजुषाम् ॥२२॥

अब यजुर्वेद-सबन्धी संहिताओं में प्रयुक्त स्वर-चिह्नों का वर्णन करते हैं।

तानि द्विविधानि शुक्लकृष्णभेदाद् ॥२३॥

यजुः संहिताओं के दो भेद हैं। शुक्ल और कृष्ण।

तत्र शुक्लेषु माध्यन्दिनकाण्वे एवोपलभ्येते ॥२४॥

पन्द्रह प्रकार के शुक्ल यजुओं में माध्यन्दिन और काण्व ये दो पाठ ही उपलब्ध होते हैं।

कृष्णेषु तैत्तिरीयमैत्रायणीकाठककपिष्ठलकठाः ॥२५॥

छियासी प्रकार के कृष्ण यजुओं में तैत्तिरीय, मैत्रायणी, काठक और कपिष्ठलकठ ये चार ही पाठ मिलते हैं।

इस प्रकार १०१ प्रकार की याजुष संहिताओं में केवल ६ संहिताए ही सम्प्रति उपलब्ध हैं।

माध्यन्दिने उदात्तानुदात्तैकश्रुतिसामान्यस्वरिता ऋग्वेदवत् ॥२६॥

शुक्ल यजुः के माध्यन्दिन पाठ में उदात्त, अनुदात्त, एकश्रुति और सामान्य स्वरित का निर्देश ऋग्वेद के समान ही किया जाता है।

यथा—इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ ॥ १।१॥

यहां नीचे आड़ी रेखा से अङ्कित 'इ-त्वो-वा' अनुदात्त हैं (सूत्र ८) ऊपर खड़ी रेखा से चिह्नित 'त्वा-व' स्वरित है (सूत्र ९) स्वरित 'व' से परे क्रमशः चिह्न का 'स्थ' एकश्रुति स्वर वाला है (सूत्र १०)। अनुदात्त 'इ-त्वो-वा' से परे क्रमशः चिह्न-रहित 'षे-र्जे-य' उदात्त हैं (सूत्र ११)।

अनुदात्तात्परा जात्यक्षैप्रप्रश्लेषाभिनिहिता अधोवक्ररेखया ॥२७॥

अनुदात्त से परे जात्य, क्षैप्र, प्रश्लेष और अभिनिहित स्वरित का निर्देश नीचे ऐसी वक्ररेखा से किया जाता है। यथा—

जात्य—वीर्याणि प्र वोचं यः ॥५।१८॥
क्षैप्र—द्यौरसि पृथिव्यसि ॥१।२॥
प्रश्लेष—अभीन्धतामुखे वरूंत्रीष्ट्वा ॥११।६१॥
अभिनिहित—घर्मोऽसि ॥१।२॥ वृत्रोऽसि ॥१।२८॥

जब क्षैप्र स्वरित अनुदात्त से परे नहीं होता, तब इसे सामान्य स्वरित के समान ऊर्ध्व रेखा से ही अङ्कित करते हैं। यथा—

त्र्यम्बकं यजामहे (३।६०)। अवं देवं त्र्यम्बकम् (३।५८)।
उर्व्या व्यद्यौत् (१२।१)
उदात्तपरा अधस्तात् ‿ चिह्नेन ॥२८॥

यदि जात्य, क्षैप्र, प्रश्लेष और अभिनिहित स्वरित से परे उदात्त वर्ण हो तो इन के नीचे त्रिशूल सदृश ‿ चिह्न का निर्देश किया जाता है। यथा—

जात्य—वेर्दूत्यमवतां त्वा ॥ २।९॥
क्षैप्र—उर्वन्तरिक्षमन्वमि ॥ १।७, ११॥
प्रश्लेष—अभीमं महिमा ॥ ३८।१७॥
अभिनिहित—पाशेर्योऽस्मान् द्वेष्टि य चं ॥ १।२५॥
लोकेऽस्मिन् ॥ ३।२१॥

स्पष्टीकरण—जात्य, क्षैप्र, प्रश्लेष और अभिनिहित स्वरित से परे जहां अनुदात्त या एकश्रुति स्वर होता है अथवा जहां कोई भी वर्ण आगे नहीं होता, वहां इनका निर्देश नीचे ⌐ ऐसी वक्र (टेढ़ी) रेखा से किया जाता है। और जहां इन से परे उदात्त स्वर होता है, वहां नीचे ‿ चिह्न लगाया जाता है।

विशेष—यजुर्वेद १८।५० में पाठ है—

स्वर्ण घर्मः स्वाहा[1] स्वर्णार्कः स्वाहा स्वर्ण शुक्रः स्वाहा
स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा स्वर्ण सूर्यः स्वाहा ॥

---

१. तै० सं० ५।७।५ में 'सुवर्न घर्मः स्वाहा सुवर्नार्कः स्वाहा' आदि में णत्वाभाव देखा जाता है।

इसमें प्रथम जात्य अथवा क्षैप्र[1] 'स्व' पद में उदात्त 'न' (ण) परे रहने पर नीचे ‿ चिह्न उपलब्ध नहीं होता, अनुदात्त के समान पड़ी रेखा ही उपलब्ध होती है। परन्तु आगे सर्वत्र 'स्वर्ण' में स्व के नीचे यथार्थ ‿ चिह्न उपलब्ध होता है। यह वैषम्य अभी तक हमारी समझ में नहीं आया।

पदपाठ में यहां स्वः स्वरित है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के भाष्य में मन्त्र पाठ में प्रथम स्वर्ण पद के नीचे भी ‿ चिह्न उपलब्ध होता है। अतः यह समस्या अधिक गूढ़ हो जाती है।

यजुः १७।६८ में एक पाठ है—

स्वर्यन्तो नापेक्षन्ते आ।

यहां भी स्वः के नीचे ‿ चिह्न के स्थान में पड़ी रेखा (जो अनुदात्त का चिह्न है) उपलब्ध होती है। पद-पाठ में स्वः। यन्तः ऐसा पदच्छेद दर्शाया है। यह भी एक विचारणीय पाठ है। हमारे विचार में स्वर्यन्तः को यदि स्वरानुरोध से एक पद मान लें तो उत्तरपदप्रकृति स्वर होने पर स्वः के स्वरित को अनुदात्त हो सकता है। ऋग्वेद १०।६५।१४ में भी ऐसा ही एक पाठ है—

स्वर्विदः स्वर्गिरो ब्रह्म।

यहां स्वर्विदः में स्वः अनुदात्त है। पदकार ने इसे समस्त पद माना है। इसी प्रकार स्वर्यन्तः को भी समस्त पद मानना युक्त है।

कम्प भावो यजुष्षु मैत्रायणीवर्जम् ।२९॥

मैत्रायणी संहिता को छोड़कर यजुर्वेद की उपलब्ध सभी संहिताओं में ऋग्वेद के समान उदात्त परे रहने पर जात्य आदि कम्पित[2] नहीं होते। मैत्रायणी संहिता में कम्प का विधान ४७ वें सूत्र से किया है।

काण्व जात्यक्षैप्रप्रश्लेषाभिनिहिता अनुदात्तपरा[3] शीर्षस्थोर्ध्व-रेखया ॥३०॥

काण्व-पाठ में जात्य, क्षैप्र, प्रश्लेष और अभिनिहित स्वरित से परे उदात्त न हो,[3]

---

१. देखो सूत्र १८ के उदाहरणस्थ 'स्व' पद की टिप्पणी॥

२. वाजसनेय प्रातिशाख्य १।१२० की व्याख्याओं में ताथाभाव्य स्वरित के कम्प का विधान उपलब्ध होता है। इस विषय में हम अ० ३ में ताथाभाव्य स्वरित के प्रसङ्ग में लिख चुके हैं।

३. नास्ति उदात्तो यत्र सोऽनुदात्तः।

अर्थात् अनुदात्त एकश्रुति अथवा विराम हो तो इनका निर्देश ऋग्वेद के समान शीर्षस्थ ऊर्ध्वरेखा से किया जाता है। यथा—

जात्य—वीर्याणि प्र वोचं यः ॥ ५।५।६॥

क्षैप्र—द्यौरसि पृथिव्यसि ॥ १।२।१॥

प्रश्लेष—अभीन्धतामुखे ॥ १२।६।२॥

अभिनिहित—घर्मोऽसि ॥ १।२।१॥ बुधोऽसि ॥ १।९।६॥

उदात्तपरा अधस्ताद् रेखया ॥ ३१॥

जब जात्य, क्षैप्र, प्रश्लेष और अभिनिहित स्वरितों से परे उदात्त वर्ण हो तो इन का निर्देश नीचे पड़ी रेखा (अनुदात्त चिह्न) से ही किया जाता है यथा—

जात्य—वीर्यं मयि धेहि ॥ २१।१।८॥

क्षैप्र—उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ १।३।३॥

प्रश्लेष—अभीमं मंहिमा ॥ ३८।४।१॥

अभिनिहित—योऽस्मान् द्वेष्टि यं च ॥ १।९।४॥

यहां उदात्त परे रहने पर क्रमशः जात्य 'यं', क्षैप्र 'व', प्रश्लेष, 'भी' और अभिनिहित 'यो' नीचे आड़ी से अङ्कित किए गए हैं।

विशेष—(क) प्रतीत होता है कि जात्यादि स्वरितों के विषय में भी साधारणतया वही नियम आश्रित किया है, जो सामान्य स्वरित में आश्रित किया जाता है। उदात्त से परे अनुदात्त को जो स्वरित कहा गया है (उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः। अष्टा० ८।४।६६), वह उदात्त और स्वरित परे रहने पर नहीं होता, (नोदात्तस्वरितोदयम्०। अष्टा० ८।४।६७)। इसी प्रकार काण्व में भी यह नियम जान लेना चाहिए कि उदात्त परे रहने पर जात्यादि स्वरित भी स्वरित नहीं होते, अनुदात्त ही रहते हैं।

विशेष—वाजसनेय प्रातिशाख्य ४।१३८ में सूत्र हैं—

निहितमुदात्तस्वरितपरम्।

इसका अर्थ उव्वट और अनन्त दोनों ने सामान्यता यही किया है कि जिस स्वरित से परे उदात्त अथवा स्वरित हो वह अनुदात्त हो जाता है। इन सूत्रों की व्याख्या में दोनों ने ऐसे ही उदाहरण दिये हैं जिनमें पूर्वसूत्र ४।१३७ से उदात्त से परे विद्यमान अनुदात्त को स्वरित होता है।

यहां यह ध्यान रहे कि प्रातिशाख्यकार ने पाणिनि के समान (नोदात्त स्वरितोदयम्०) उदात्त उत्तरवर्ती अनुदात्त के प्राप्यमाण स्वरितधर्म का प्रतिषेध नहीं किया, अपितु उसे स्वरित करके पुनः अनुदात्त बनाया है। इस प्रयत्नातिशय का प्रयोजन यह है कि काण्व-संहिता में उदात्त स्वरित परक जात्यादि स्वरितों क भी अनुदात्त हो जाए। इसी बात को ध्यान में रखकर अनन्त ने वाज० प्राति० ४।१४१ की व्याख्या में लिखा है—

स्वर्ण घर्मः प्रसवेऽश्विनोः परमेष्ठ्यभिधीतः [इत्यादिषु स्वरितस्योत्तरोभागः प्रतिहन्यते] तैत्तिरीयाणामयं पक्षः। काण्वानां तु निहितमुदात्तस्वरितपरमिति सूत्रेणानुदात्त एव।

अर्थात्—काण्वों के मत में सूत्र ४।१३८ से 'स्वर्णः' आदि में स्वरित को अनुदात्त ही होता है।

अनन्त की भूल—उपरि उद्धृत पाठ में अनन्त ने उदात्तस्वरित परे रहने पर ज्यात्यादि स्वरितों के उत्तर भाग को तैत्तिरीयों के मत में अनुदात्त कहा है वह चिन्त्य है। तैत्तिरीय संहिता में जात्यादि स्वरित के उत्तर भाग को उदात्तस्वरित परे कहीं भी अनुदात्त नहीं होता स्वरित ही रहता है। यथा—

योऽस्मान् धूर्वति १।१।३'।

प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम् १।१।३॥

स्वरित के उत्तर भाग को अनुदात्त बनाने का मत तो शाकल्य तथा शौनकादि शाखा का है। अतएव वहां कम्प भी होता है।

(ख) सूत्र २८ के विशेष वक्तव्य में हमने माध्यन्दिन संहिता का जो पाठ उद्धृत किया था उसका काण्व-पाठ इस प्रकार है—

स्वर्ण घर्मः स्वाहा स्वर्णार्कः स्वाहा स्वर्ण शुक्रः स्वाहा।
स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा स्वर्ण सूर्यः स्वाहा॥ २२।२।१३॥

यहां सर्वत्र उदात्त परे रहने पर जात्य अथवा क्षैप्र स्वरित 'स्व' का निर्देश नीचे पड़ी रेखा से किया है।

विशेष—यद्यपि काण्व संहिता में जात्यादि स्वरित को अनुदात्त का विधान वाज०प्राति० ४।१३८ सूत्र से कर दिया, पुनरपि 'स्वर्ण घर्मः' आदि मन्त्र में 'स्वर्णार्कः' के 'स्वः' के स्वरित को अनुदात्त हो जाने पर भी उससे पूर्ववर्ती 'स्वाहा' के उदात्त 'स्वा

से परे अनुदात्त 'हा' अनुदात्त ही रहता है। उदात्त से परे अनुदात्त 'हा' अनुदात्त तभी रह सकता है जब 'स्वः' को स्वरित माना जाए। इस व्यवस्था से प्रतीत होता है कि जात्यादि स्वरित को वस्तुतः अनुदात्त नहीं होता वे रहते स्वरित ही हैं परन्तु उनके लिए चिह्न वही व्यवहृत होता है जो अनुदात्त का है। अथवा व्याकरणवत् विनापि वतिनाऽतिदेशो गम्यते—ङित्-ङिद्वत्, कित्-किद्वत् नियमानुसार जात्यादि स्वरितों को अनुदात्त कहा अर्थात् वे अनुदात्तवत् होते हैं, उनमें स्वाश्रय स्वरितत्व धर्म विद्यमान रहता है। अनुदात्त होने से अनुदात्तचिह्न से युक्त होते हैं और स्वाश्रय स्वरितत्व रहने से उनके परे रहने पर उदात्त से परे अनुदात्त ही रहता है, स्वरित नहीं होता।

(ग) काण्वसंहिता के किसी किसी हस्तलेख में माध्यन्दिन पाठ के समान भी जात्य आदि स्वरितों का निर्देश उपलब्ध होता है[1]।

(घ) जैसे काण्वसंहिता के किन्हीं पदपाठों में जात्यादि स्वरितों का माध्यन्दिन पाठ के समान स्वरितत्व उपलब्ध होता है, क्या उसी प्रकार माध्यन्दिन संहिता के स्वर्ण घर्मः स्वाहा (१८।५०) में स्वरित 'स्व' का उदात्त परे रहने पर जो अनुदात्तत्व देखा जाता है वह काण्व प्रभाव से है ?

इसी प्रकार माध्यन्दिनी संहिता के कई पद पाठों में

स्वरिति स्वः (यथा २।२५)

उदात्त परे रहने पर स्व का अनुदात्त पाठ मिलता है क्या वह काण्व पाठ प्रभाव से है।

ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिन पर गम्भीरता से विचार करना होगा।

कपिष्ठलकठे सर्वं काण्ववत् ॥३२॥

कपिष्ठलकठ संहिता में सारा स्वराङ्कनप्रकार काण्वसंहिता के समान ही उपलब्ध होता है।

उदात्तपरौ ह्रस्वौ जात्यक्षैप्रौ दीर्घौ ॥३३॥

कपिष्ठलकठ में ह्रस्व जात्य और क्षैप्र स्वरित उदात्त परे रहने पर दीर्घ हो जाते हैं। यथा—

---

१. वैदिक पदानुक्रम कोष, संहिता भाग, खण्ड १, भूमिका पृष्ठ CXIX (११९) ॥

उर्वान्तरिक्षम् ।१।२।। अप्स्वान्तः ॥४८।४॥

विशेष—कपिष्ठलकठ का स्वराङ्कन-प्रकार हमने श्री पं० विश्वबन्धु जी के वैदिक कोष संहिता भाग के प्रथम खण्ड की भूमिका (पृष्ठ ११९) के अनुसार किया है। श्री डा० रघुवीर जी द्वारा प्रकाशित कपिष्ठलकठ में स्वरचिह्न तथा उदात्तपरक ह्रस्व जात्य तथा क्षैप्र दीर्घ उपलब्ध नहीं होते। इसलिए हम पूरा विवेचन नहीं कर सके।

तैत्तिरीये चोदात्तपरान् जात्यादीन् वर्जयित्वा ॥३४॥

तैत्तिरीय[1] पाठ में उदात्त आदि स्वरों का निर्देश काण्व-पाठ के समान ही है, उदात्त परे है जिनसे ऐसे जात्य, क्षैप्र, प्रश्लेष और अभिनिहित स्वरित को छोड़कर।

उदात्तपरा अपि जात्यादयः शीर्षस्थोर्ध्वरेखया ॥३५॥

जिन जात्य, क्षैप्र, प्रश्लेष और अभिनिहित स्वरित से परे उदात्त हो वह स्वरित भी तैत्तिरीय संहिता में ऊपर खड़ी रेखा से ⊥ अङ्कित किया जाता है।

स्पष्टीकरण—तैत्तिरीय संहिता में स्वरितमात्र ऊर्ध्व खड़ी रेखा से अङ्कित होता है।

काठके उदात्तः शीर्षस्थोर्ध्वरेखया ॥३६॥

काठक[2] संहिता में उदात्त स्वर शीर्षस्थ ऊर्ध्वरेखा से चिह्नित होता है। यथा—

---

१. वस्तुतः तैत्तिरीय नाम चरण का है, शाखा का नहीं, यथा शुक्ल यजुर्वेद का वाजसनेय। तैत्तिरीय चरण की आपस्तम्ब, बौधायन, भरद्वाज आदि ८ शाखाएं थीं। उनमें से केवल एक, आपस्तम्ब शाखा शेष रह गई और सब लुप्त हो गईं। अतः आपस्तम्ब शाखा ही चरण (तैत्तिरीय) नाम से व्यवहृत होने लग गई॥

२. 'काठक' चरण का नाम है शाखा का नहीं। काठक चरण में चारायणीय, कपिष्ठल आदि १२ शाखाएं थीं। उनमें से एक-मात्र शाखा (इसका वास्तविक नाम अज्ञात है) के उपलब्ध होने से इसका चरण नाम ही व्यवहार होने लग गया। अभी कुछ वर्ष हुए, इस चरण की कपिष्ठल शाखा का भी एक खण्डित हस्तलेख उपलब्ध हुआ था। उसके आधार पर लाहौर से इसका प्रकाशन हो चुका है॥

देवस्य त्वा सवितुः ।१।२॥

जात्यक्षैप्रप्रश्लेषाभिनिहिता अधस्तादर्धचन्द्रेणानुदात्तपरे ॥३७॥

जात्य, क्षैप्र, प्रश्लेष और अभिनिहित स्वरित नीचे अर्धचन्द्र चिह्न[1] से अङ्कित किए जाते हैं। यदि उदात्त परे न हो तो।

अनुदात्त परे असमर्थ समास है। इससे अनुदात्त एकश्रुति परे रहने पर अथवा अवसान में भी जात्यादि स्वरितों का नीचे अर्धचन्द्र से निर्देश किया जाता है।

अनुदात्त अथवा एकश्रुति परे यथा—

जात्य— निष्टर्क्यं बध्नाति । २४।५॥

वीर्यमभिसमियात् । २४।५॥

क्षैप्र—व्युद्धा वा । २४।४॥

प्रश्लेष – उर्वन्तरिक्षं वीहि । १।४॥

अभिनिहित—प्राणो व्यानोऽतिष्ठिता । ३८।५॥

अवसान परे यथा—

जात्य—प्र वीर्यम् । श्नथद्··· । ४।१५॥

मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् । यस्मिन्··· ७।१४॥

प्रश्लेष—सुगं मेषाय मेष्यै । अथो··· । ६।७॥

उदात्त स्वरितपरा अधस्तात् चिह्नेन ॥३८॥

उदात्त अथवा स्वरित वर्ण परे रहने पर जात्य, क्षैप्र, प्रश्लेष और अभिनिहित स्वरित नीचे ~ चिह्न[2] से चिह्नित किए जाते हैं।

---

१. ओडर के संस्करण में ⌣ चिह्न के स्थान पर ⌒ चिह्न का व्यवहार पाया जाता है।

२. ओडर के संस्करण में ~ चिह्न के स्थान पर Λ ऐसे चिह्न का व्यवहार मिलता है।

उदात्तपरे यथा—

जात्य—उक्थाव्यं यत्त इन्द्र । ४।५॥

क्षैप्र—उर्वन्तरिक्षम् । १।२,४॥

प्रश्लेष—व्रीहीन्द्रस्य १।२॥ ह्रीमाः । २४।४॥

अभिनिहित—प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम् । १।२॥

आस्माकोऽसीति । २४।५॥

स्वरितपर यथा—

सोऽर्कोऽभवत् । २१।६॥

विशेष—संहिता में सूत्र ३७, ३८ के नियमों का क्वचित् व्युत्क्रमण भी देखा जाता है । यथा—

विशो वै वीर्यमपाक्रामत् ॥ ११।६॥

देवाः पितरो मनुष्यास्तेऽन्यत आसन् । १०।७॥

इनमें प्रथम उदाहरण में उदात्त परे रहने पर भी 'वीर्य' के 'र्य' को w चिह्न के स्थान u चिह्न से अङ्कित किया गया है । इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में 'ष्या' से परे स्वरित होने पर भी w के स्थान में u चिह्न से अङ्कित किया गया है । यदि ऐसे स्थलों पर पाठशुद्धि नहीं हुई तो इन नियमों के अपवाद नियमों की प्रकल्पना करनी होगी ।

विशेष—श्री पं० विश्वबन्धु जी के निर्देशानुसार उदात्तपरक स्वरित के नीचे हस्तलेखों में आडी रेखा होती है । यथा—

प्रसवेऽश्विनोः । २।९॥

उदात्तात् परः स्वरितोऽधस्ताद् बिन्दुना ॥३९॥

उदात्त से परे जो अनुदात्तस्थानीय स्वरित होता है, उसके नीचे बिन्दु लगाया जाता है[1] । यथा—

---

१. वैदिक पदानुक्रम कोष, संहिता भाग, खण्ड १, भूमिका पृष्ठ १२१ ।

इषे त्वोर्जे त्वा ।१।१॥

विशेष—(१) श्रोडर द्वारा सम्पादित संस्करण में इस स्वरित के लिए कोई चिह्न उपलब्ध नहीं होता। श्री पं० सातवलेकर जी ने भी काठक के मुद्रण में श्रोडर का ही अनुकरण किया है। अतः उनके संस्करण में भी इसके लिए कोई चिह्न नहीं है।

(२) काठक के उपरि उद्धृत पाठ से ज्ञात होता है कि संहिता में उदात्त परे रहने पर भी अनुदात्त को स्वरित होता है। 'इषे' का 'षे' उदात्त है। उस से परे 'त्वो' अनुदात्त है। 'त्वो' से परे 'र्जे' उदात्त है। यहां नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यप-गालवानाम् (अष्टा० ८।४।६७) के अनुसार अनुदात्त 'त्वो' को स्वरित नहीं होना चाहिए। परन्तु काठक संहिता में देखा जाता है। अतः पाणिनि के सूत्र में, गार्ग्य, काश्यप और गालव के साथ 'कठ' का भी उपसंख्यान कर देना चाहिए।

उदात्तपरोऽनुदात्तश्चाधस्तादूर्ध्वदण्डेन ॥४०॥

उदात्त जिस अनुदात्त के परे हो, उस अनुदात्त के नीचे खड़ी रेखा से चिह्न किया जाता है।[1]

यथा—अग्नि ।[2]

विशेष—श्री पं० विश्वबन्धु जी ने वै० प० कोष संहिता भाग की भूमिका पृष्ठ १२१ की टिप्पणी ४ में लिखा है—

अनुदात्त भूमि स्वरित (जो उदात्त से परे अनुदात्त को स्वरित हुआ हो) के लिए श्रोडर ने कोई संकेत नहीं अपनाया। पं० सातवलेकर ने मूल पाठ की दो स्थितियों को दिखाने के लिये ⌊ तथा ⌣ चिह्नों का प्रयोग किया है।

पं० विश्वबन्धु जी की भूल—पण्डितजी का उक्त लेख अशुद्ध है। श्रोडर के समान पं० सातवलेकर जी ने भी अनुदात्त भूमि स्वरित के लिए कोई चिह्न नहीं बरता। पण्डितजी ने श्री सातवलेकर जी द्वारा व्यवहृत जिन चिह्नों का वर्णन किया है वे अनुदात्तभूमि स्वरित के लिए नहीं प्रयुक्त हुए अपितु जात्यादि स्वरितों

---

१. वैदिक पदानुक्रम कोष, संहिता भाग, खण्ड १, भूमिका पृष्ठ १२१।

२. वही, पृष्ठ १२१॥

के लिए प्रयुक्त हुए हैं। श्रोडर ने भी जात्यादि स्वरितों के लिए क्रमशः ̣ तथा ̀ चिह्नों का व्यवहार किया है।

काठक संहिता में सर्वत्र स्वरचिह्न उपलब्ध नहीं होते। अधिकांश भाग पर स्वरचिह्न नष्ट हो गए। जहां स्वरचिह्न उपलब्ध होते हैं, उन्हीं के अनुसार उक्त व्यवस्था दर्शाई है। सूत्र ३९, ४० के निर्देश श्री पं० विश्वबन्धु जी के लेखानुसार किए हैं। शेष व्यवस्था श्री पं० सातवलेकर जी के संस्करण के अनुसार दिखलाई है।

अथ मैत्रायणीयस्वराङ्कनप्रकारः ॥४१॥

अब मैत्रायणी संहिता के स्वराङ्कन का प्रकार लिखते हैं।

मैत्रायणी संहिता का स्वराङ्कन-प्रकार पूर्वनिर्दिष्ट ग्रन्थों से सर्वथा विलक्षण है। इसलिए नया अधिकार किया है।

विशेष—मैत्रायणी संहिता के हस्तलेखों में व्यवहृत स्वरचिह्न यथार्थरूप में मुद्रण में नहीं आ सकता, जब तक कि उसके लिए सस्वर टाइप विशेषरूप से न ढलवाए जाएं। मैत्रायणी संहिता में कुछ स्वर वर्ण के मध्य में अङ्कित किए जाते हैं। इसके हस्तलिखित ग्रन्थों में कैसे स्वर अङ्कित किए जाते हैं, इसका कुछ परिचय स्वाध्यायमण्डल (औंध, वर्तमान-पारड़ी) से प्रकाशित मैत्रायणी संहिता के उपोद्घात में दिया है, परन्तु वह पूर्णतया ठीक नहीं है।

हम यहां स्वाध्याय मण्डल द्वारा प्रकाशित मैत्रायणी संहिता (इस संस्करण में मुद्रणार्थ स्वरचिह्नों में कुछ परिवर्तन किया है) के अनुसार स्वरचिह्न का व्याख्यान करते हैं।

उदात्तः शीर्षस्थोर्ध्वरेखया ॥४२॥

मैत्रायणी संहिता में उदात्त का निर्देश शीर्षस्थ ऊर्ध्व रेखा | से किया जाता है। यथा—

इषे त्वा सुभूतायु वायव स्थ। १।१।१॥

यहां 'षे-ता-य' ये तीन उदात्त हैं। अतः इनके ऊपर खड़ी रेखा है।

अनुदात्तोऽधः सरलरेखया ॥४३॥

अनुदात्त का निर्देश नीचे सीधी रेखा से किया जाता है। यथा—

इषे त्वा सुभूतायु वायव स्थ। १।१।१॥

यहां 'इ-भू-वा' ये अक्षर अनुदात्त हैं।

उदात्तात् परः स्वरितोऽधोवक्ररेखयाऽन्त्य एकश्रुतिपरश्च ॥४४॥

उदात्त से परे जो स्वरित होता है, उसके नीचे ऐसी ⌐ वक्र रेखा का चिह्न किया जाता है, यदि वह स्वरित अन्त में हो (उससे परे कोई वर्ण न हो) अथवा उससे परे एकश्रुति वाला अक्षर हो। यथा—

अन्त्य—य॑ ए॒वꣳ विद्वा॑न॒ग्निहो॒त्रं जु॒होति॑। १।८।६॥
दो॒षा व॑स्तो॒र्नम॒ः स्वाहा॒। १।८।७॥

यहां उदात्त से परे 'जुहोति' का 'ति' और 'स्वाहा' का 'हा' अन्त्यस्वरित है, इससे आगे और वर्ण नहीं है।

एकश्रुतिपरक—इषे॑ त्वा॒ सुभू॑तायु॒ वाय॑व॒ स्थ ॥१।१।१॥
य॑ ए॒वꣳ विद्वा॑न॒ग्निहो॒त्रं जु॒होति॑ ॥१।८।६॥

यहां प्रथम उदाहरण में उदात्त 'षे' से परे 'त्वा' स्वरित है, उसके आगे 'सु' एकश्रुति है। इसी प्रकार 'व' स्वरित से परे 'स्थ' एकश्रुति है। द्वितीय उदाहरण में उदात्त 'द्वा' से परे 'न' स्वरित है और उससे परे 'ग्नि' एकश्रुति है।

विशेष—हस्तलेखों में ऐसे स्वरित को बीच में से काटती हुई आड़ी रेखा से अङ्कित करते हैं।

अनुदात्तपरोऽधस्तात् ⌣ चिह्नेन ॥४५॥

यदि उदात्त से परे ऐसा स्वरित हो जिसके आगे अनुदात्त अक्षर विद्यमान हो तो वह स्वरित नीचे त्रिशूल ⌣ सदृश चिह्न से अङ्कित किया जाता है। यथा—

इषे॑ त्वा॒ सुभू॑तायु॒ वाय॑व॒ स्थ। १।१।१॥
ता॑ अ॒ति॒मन्य॒मानाः। २।५।६॥

यहां प्रथम उदाहरण में उदात्त 'ता' से परे विद्यमान स्वरित 'य' से आगे 'वा' अनुदात्त अक्षर है। अतः यहां 'य' के नीचे ⌣ चिह्न है। इसी प्रकार अगले उदाहरण में उदात्त 'ता' से परे स्वरित 'अ' और उससे परे अनुदात्त 'ति' है।

कहीं कहीं उदात्त से परे स्वरित का अनुदात्त परे रहने पर ∪ चिह्न के स्थान में ⌐ चिह्न से भी संकेत मिलता है। यथा—

मंहः स्थ मंहो वा...। १।५।२॥

क्या यहां पाठाशुद्धि है अथवा अन्य कारण है यह विचारणीय है।

विशेष—हस्तलेखों में इस प्रकार के स्वरित के ऊपर तीन खड़ी रेखाएं अङ्कित की जाती है। यथा—

|||

इध्मः प्रथमः। १।४।११॥

|||

सवितुः प्रसव३वेऽश्विनोः। १।२।१५॥[1]

अनुदात्तैकश्रुतिपरा जात्यादयोऽधोऽर्धचन्द्रेण ॥४६॥

अनुदात्त और एकश्रुति परे रहने पर जात्य, क्षैप्र, प्रश्लेष, अभिनिहित स्वरितों के नीचे ∪ ऐसा अर्धचन्द्राकार चिह्न प्रयुक्त होता है।

अनुदात्तपरक यथा—

जात्य—वीर्याणि प्रवोचꣳ यः। १।२।६॥

क्षैप्र—चरुः सिनीवाल्यै चरुः। २।६।४॥

अभिनिहित—मित्रोऽसि....। २।६।९॥

एकश्रुतिपरक यथा—

जात्य—षड्द्युावꣳ शिक्यं भवति षड्। ३।२।१॥

('शिक्यं' उदाहरण)

क्षैप्र—स्वरिद्धि३ स्वर्मघꣳ। १।२।१५॥

(सु+अर्=स्वः, क्षैप्र सन्धि)

---

१. द्र० वैदिक पदानुक्रम कोश, संहिता भाग, खण्ड १, भूमिका पृष्ठ १२१॥

अभिनिहित[1]—श्वोभूतेऽग्नीषोमीया···· । २।६।१॥
सोऽकामयत । २।५।११॥

अनुदात्तपरक और एकश्रुतिपरक प्रश्लेष के उदाहरण मृग्य हैं।

विशेष—एकश्रुतिपरक अभिनिहित के विषय में उत्तर सूत्र की व्याख्या में विशेष संख्या २ देखें।

उदात्तपराः कम्पन्ते ॥४७॥

उदात्त परे रहने पर जात्य, क्षैप्र, प्रश्लेष और अभिनिहित स्वरित कम्प को प्राप्त होते हैं।

कम्पितोऽधस्तात् सरलरेखया, ततः पूर्वं त्र्यङ्कश्च ॥४८॥

पूर्वनिर्दिष्ट कम्पधर्मयुक्त स्वरित के नीचे सीधी रेखा का चिह्न किया जाता है और उससे पूर्व ३ का अङ्क लिखा जाता है। यथा—

जात्य—नैकमेकं पितृदेव३त्यं तद् । १।४।१०॥
स्रुक् का३र्यानेन वा । १।८।१॥

क्षैप्र—मूर्धा हराम्य३र्वन्तरिक्षं ३वीह्यदित्यास्त्वा ।
१।१।२॥

प्रश्लेष—उ३र्वन्तरिक्षं ३वीहीत्यन्तरिक्ष····· ।
३।१०।१॥

अभिनिहित—अ३ज्रोऽस्येकपादहिरसि । १।२।१२॥
····सवितुः प्रस३वेऽश्विनोः । १।२।१५॥

विशेष—(क) श्रोडर ने अपने सस्करण में सकम्प स्वरित से पूर्व केवल ३ का अङ्क ही दिया है। नीचे सीधी रेखा नहीं दी।

---

१. नमऽपगुरमाणाय (२।६।८) यहां 'नमः' पद आद्युदात्त है, 'मः' अनुदात्त है। उससे परे 'अपगुरमाणाय' का अकार अनुदात्त है। दोनों की अभिनिहित सन्धि अनुदात्त हुई, तत्पश्चात् उदात्त 'न' से परे अनुदात्त 'मो' को स्वरित हुआ। अतः यह अभिनिहित स्वरित नहीं है।

क्षैप्र के उदाहरण ३वीह्यदित्यास्त्वा का पाठ पं० सातवलेकरजी के संस्करण में इस प्रकार छपा है—

०रिक्षꣳ वीह्य दित्यास्त्वा ।

यहां 'वी' को उर्ध्वरेखा से उदात्त दर्शाया है और उसके पूर्व में ३ का अङ्क भी नहीं है । यह अशुद्ध पाठ है । वीहि में 'वि+इहि' सन्धि है । 'वि' उदात्त है । और 'इ' अनुदात्त । श्रोडर ने अपने संस्करण में कहीं कहीं पदपाठ का भी निर्देश किया है । तदनुसार भी 'वि' उदात्त है और 'इहि' का 'इ' अनुदात्त । दोनों की प्रश्लिष्ट सन्धि स्वरित ही होगी । अगले प्रश्लेष के उदाहरण में 'वीहि' का स्वर ठीक मुद्रित हुआ है ।

(ख) स्वविदि……।१।२।१५ में 'स्व' पद नीचे सीधी रेखा से तो अङ्कित है परन्तु उससे पूर्व ३ का अङ्क नहीं है । इसलिये 'स्व' को क्षैप्र स्वरित समझकर यहां पाठाशुद्धि की कल्पना ठीक नहीं है । वस्तुतः यहां 'स्वविद' एक समस्त पद है उत्तरपद प्रकृतिस्वर होने से 'स्व' अनुदात्त है ।

(ग) पूर्वपदान्त अनुदात्त से परे पदादि उदात्त के साथ प्रश्लेष अथवा अभिनिहित सन्धि होनें पर एकादेश उदात्तेनोदात्तः (अ० ८।२।५) से उदात्त सन्धि होती है[1] । पूर्वपदान्त उदात्त हो और अगला पदादि अनुदात्त हो तब एकादेश नियम से व्यवस्थित विभाषा के रूप में उदात्त अनुदात्त अ+अ अथवा आ+अ की प्रश्लिष्ट संधि उदात्त होती है । यथा—

पृष्ठान्येवाचीक्लृपत् । १।५।६॥

आप्त्वावरुन्धे । १।५।६॥

यहां प्रथम उदाहरण में एव+अची० और द्वितीय में आप्त्वा+अव की संधि उदात्त है । इ+इ, उ+उ की प्रश्लिष्ट सन्धि स्वरित होती है । जैसे पूर्व उदाहरणों में वि+इहि की सन्धि दर्शा चुके हैं ।

उदात्त अनुदात्त की अभिनिहित सन्धि भी स्वरित ही होती है । यथा—

---

१. श्री पं० सातवलेकर जी द्वारा सम्पादित मै. सं. में नमोऽस्यद्भ्यो …… (२।९।४) में 'नमः' के अनुदात्त 'म' और 'अस्यद्भ्यः' के उदात्त 'अ' की सन्धि 'मो' स्वरित है, परन्तु यह पाठ अशुद्ध है । श्रोडर के संस्करण में 'मो' उदात्त ही है ।

गो ३ष्ठेऽयं.....। १।५।२॥

(घ) ऋग् और अथर्व संहिताओं में ह्रस्व कम्पित स्वरित से परे १ संख्या तथा दीर्घ से परे ३ संख्या का निर्देश किया जाता है (देखो तत्तत् प्रकरण के सूत्र)। ऋग्वेद के खिलपाठ के कश्मीर-संस्करण में ह्रस्व और दीर्घ दोनों प्रकार के कम्पित स्वरितों में ३ संख्या का उल्लेख मिलता है (देखो सूत्र २०)। परन्तु मैत्रायणी संहिता में ३ का अङ्क ह्रस्व और दीर्घ कम्पित स्वरित के उत्तर न लिखा जाकर उससे पूर्व लिखा जाता है। यह अत्यधिक वैलक्षण्य है। कपिष्ठलकठ में ऐसे ह्रस्व स्वरित से परे या पूर्व ३ का अङ्क तो नहीं लिखा जाता, परन्तु वहां ह्रस्व स्वरित को दीर्घ ही उच्चारण किया जाता है (देखो सूत्र ३३)। इस तुलना से प्रतीत होता है कि ऋग्वेद के कश्मीर पाठ, कपिष्ठलकठ तथा मैत्रायणी संहिता का परस्पर कोई घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऋग्वेद के कश्मीर पाठ, काठक और मैत्रायणी संहिता में उदात्त के लिए शीर्षस्थ खड़ी रेखा का समान चिह्न भी हमारे इस अनुमान का पोषक है।

अथ सामवेदस्य ॥४९॥

अब सामवेद की संहिता में प्रयुक्त स्वराङ्कन-प्रकार का वर्णन किया जाता है।

सामवेद की कौथुमी और जैमिनीया दो संहिताएं प्रसिद्ध हैं। उनमें जैमिनीय-संहिता स्वररहित ही प्रकाशित हुई है। अतः यहां कौथुम-संहिता का ही स्वराङ्कन-प्रकार लिखा जाता है।

उदात्त एकाङ्केन ॥५०॥

सामसंहिता में उदात्त '१' संख्या से अङ्कित किया जाता है। यथा—

२ ३ १ २
अग्न आ याहि। पू० १।१।१॥

यहां 'आ' उपसर्ग उदात्त है।

यह सामान्य सूत्र है। अवसाने द्व्यङ्केन (सूत्र ५२) इत्यादि सूत्रों से इसका अपवाद कहेंगे। 'उदात्त' का अधिकार सूत्र ५५ तक है।

अनेकोदात्तत्वे प्रथम एव यथायथम् ॥५१॥

जहां अनेक उदात्त एक साथ प्रयुक्त होते है, वहां पहले उदात्त पर ही संकेत किया जाता है, अगले विना निर्देश के ही रहते हैं। 'यथायथम्' कहने से जहां उदात्त

स्वर का '१' एक संख्या से निर्देश होना हो, वहां एक संख्या से और जहां '२' संख्या से निर्देश (सूत्र ५२-५४) होना हो, वहां दो संख्या से होता है। यथा—

उ १र २र १ २
पाहि विश्वस्या अरातेः। पू० १।१।६॥

उ १र २र
ब्रह्मा कस्तं सपर्यति। पू० २।५।८॥

उ २
चिता गोः। पू० ५।८।२॥

उ २
महाँ हि षः। पू० ४।१०।१॥

यहां प्रथम उदाहरण में 'हि-वि' दो उदात्त हैं, दूसरे में 'ह्मा-कस्-तं' तीन। तृतीय में 'ता-गोः' दो और चतुर्थ में 'हां-हि-षः' तीन उदात्त हैं। तृतीय चतुर्थ उदाहरणों में सूत्र ५२ से उदात्त का '२' संख्या से निर्देश का विधान किया जाएगा।

स्वरितपरेषु च सरेफः ॥५२॥

सूत्र ५० से 'प्रथमः' की अनुवृत्ति आती है। जिन उदात्तों से परे स्वरित होता है, उनमें प्रथम उदात्त पर '१' संख्या के साथ 'र' का संकेत भी किया जाता है। यथा—

उ १र २र १ २
पाहि विश्वस्या अरातेः। पू० १।१।६॥

उ १र २र
ब्रह्मा कस्तं सपर्यति। पू० २।५।८॥

यहां क्रमशः 'हि' और 'ह्मा' पर '१र' का संकेत इसलिए है कि इनसे परे क्रमशः 'श्व' 'स' स्वरित हैं। सूत्र में 'स्वरित परे रहने पर' इसलिए कहा है कि उ २ चिता गोः (पू० ५।८।२) में स्वरित परे न होने से 'र' का निर्देश नहीं होता।

विशेष—किन्हीं किन्हीं मुद्रित ग्रन्थों में स्वरित परे रहने पर प्रथम उदात्त पर 'र' का निर्देश नहीं मिलता।

अवसाने द्व्यङ्कः ॥५३॥

अवसान=विराम से पूर्व उदात्त '२' संख्या से निर्दिष्ट होता है यथा—

१ २ ३ २
विश्वेषां हितः। पू० १।१।२॥

यहां 'तः' उदात्त से परे विराम है।

अवसान से पूर्व एक साथ अनेक उदात्त होने पर सूत्र ५१ के नियम से प्रथम उदात्त पर ही '२' संख्या का निर्देश किया जाता है। यथा—

३ २ ३ २
चिता गोः। पू० ५।८।२॥ महाँ हि षः। पू० ४।१०।१॥

यहां प्रथम उदाहरण में अवसान से पूर्व 'ता-गाः' दो उदात्त हैं और द्वितीय में 'हाँ-हि-षः' तीन।

अनुदात्तपरश्च ॥५४॥

अनुदात्त परे है जिससे ऐसा उदात्त '२' संख्या से निर्दिष्ट होता है।

२ ३ १ २
अग्न आ याहि। पू० १।१।१॥

यहां उदात्त 'अ' से परे अनुदात्त 'ग्न' है। सूत्र में 'अनुदात्तपर' का ग्रहण इसलिए किया है कि

१ २ ३ १र २र
इन्दो समुद्रमा विश। उ० ५ (१) १५।२॥

यहां 'न्दो' स्वरित परे रहने के कारण उदात्त 'इ' पर '२' संख्या का संकेत नहीं किया जाता।

अनुदात्तपरेषु प्रथमः सोकारेण ॥२५॥

अनुदात्त परे है जिनसे ऐसे उदात्तों में प्रथम उदात्त उकार सहित '२' संख्या से निर्दिष्ट होता है। यथा—

२उ ३ २ ३
आदित् प्रत्नस्य०। पू० १।२।१०॥

३ २उ ३ १
गिरा ममा जाता० । पू० ।१।५।८॥

यहां प्रथम उदाहरण में 'आ-दित्' दो उदात्त हैं, उनसे परे 'प्र' अनुदात्त है। द्वितीय उदाहरण में 'रा-म-मा' तीन उदात्त हैं, उनसे परे 'जा' अनुदात्त है। सूत्र में अनुदात्त पद इसलिए रखा है कि

३ २
चिता गोः । पू० ५।८।२॥

में 'ता-गो' उदात्तों से पर अनुदात्त न होने से '२' के साथ 'उ' का निर्देश नहीं होता।

स्वरितो द्व्यङ्केन ॥५६॥

साम संहिता में स्वरित का '२' संख्या से निर्देश किया जाता है। यथा—

२ ३ १ २
अग्न आ याहि । पू० १।१।१॥

यहां 'या' स्वरित के ऊपर '२. का चिह्न किया है।

विशेष—(१) 'द्व्यङ्केन' पद की अनुवृत्ति होने पर भी 'द्व्यङ्केन' का पुनः निर्देश उदात्त अधिकार की समाप्ति-ज्ञान के लिए है। स्वरित का अधिकार सूत्र ६० तक चलेगा।

(२) अनेकविध स्वरितों में से क्षैप्र आदि विशिष्ट स्वरितों के अङ्कन के विषय में आगे विशेष विधान किया जाएगा। अतः इस सूत्र में सामान्य स्वरित का ही उदाहरण दिया है।

अनेकोदात्तात् परः सरेफेण ॥५७॥

अनेक उदात्तों से परे जो स्वरित है, वह 'र' सहित '२' संख्या से निर्दिष्ट किया जाता है। यथा—

३ १र २र १ २
पाहि विश्वस्या अरातेः । पू० १।१।६॥

३ १र २र
ब्रह्मा कस्तं सपर्यति । पू० २।५।८॥

यहां प्रथम उदाहरण में 'हि-वि' दो उदात्तों से परे 'श्व' स्वरित है और द्वितीय में 'ह्मा-क-स्तं' तीन उदात्तों से परे 'स' स्वरित है।

अनुदात्तैकश्रुत्यवसानेषु क्षैप्रजात्यप्रश्लेषाभिनिहिताश्च,
न चेदुदात्तात् पराः ॥५८॥

अनुदात्त, एकश्रुति और विराम परे होने पर जो क्षैप्र-जात्य-प्रश्लेष-अभिनिहित स्वरित हैं, वे रेफविशिष्ट '२' अंक से निर्दिष्ट होते हैं, यदि क्षैप्र आदि उदात्त से परे न हों।

विशेष—यहां यथासम्भव उदाहरण समझने चाहिए। यथा—

क्षैप्र अनुदात्त परे रहने पर—

३क २र ३ २र
तन्वा गिरा। पू० १।५।८॥

एकश्रुति परे रहने पर—

२र ३
न्यस्मिन् दध्र०। उ० १ (२) ।५।८॥

अवसान (विराम) परे—

३क २र
० दुराध्यम्। पू० २।१।९॥

३क २र
दूढ्यम्। पू० २।२।७॥

यहां क्रमशः 'न्वा-न्य-ध्य-ढ्य' उदाहरण हैं।

जात्य—एकश्रुति परे रहने पर—

३क २र
० मनुष्येभिः। पू० १।८।७॥

१क २ ३क २र
तं गूर्धया स्वर्णरम्। पू० २।२।३॥

यहां क्रमशः 'ष्य-स्व' उदाहरण हैं।

प्रश्लेष—एकश्रुति परे रहने पर—

२ ३क २र
अधा हीन्द्र०। पू० ५।२।८॥

यहां 'ही' उदाहरण है।

'न चेदुदात्तात् पराः' (यदि उदात्त से परे न हों) इसलिए कहा कि

३ १ २ ३
तृम्पा व्यश्नुही० । पू० २।७।७॥

यहां क्षैप्र स्वरित 'व्य' उदात्त 'म्पा' से परे है। इसलिए 'व्य' के निर्देश में 'र' का संकेत नहीं होता।

विशेष—ऊपर क्षैप्र आदि के जितने उदाहरण दिए हैं, उन सब में क्षैप्र आदि स्वरित से पूर्व अनुदात्त का ही निर्देश उपलब्ध होता है। इसलिए सूत्र में 'न चेदुदात्तात् पराः' के स्थान में 'अनुदात्तात् परः' कहने से भी कार्य चल सकता था। 'तृम्पा व्यश्नुही०' में उदात्त से परे होने से 'र' का निर्देश अपने आप ही नहीं होता। उत्तर—'तृम्पा व्यश्नुही' में कार्य चल जाने पर भी

२र ३ २ र ३
क्वेयथ० । पू० ३।८।६॥ न्यस्मिन् दध्र० । उ० १ (२)।५।३॥

में 'क्व' और 'न्य' से पूर्व अनुदात्त न होने से 'र' का निर्देश प्राप्त नहीं होता। इसलिए सूत्र में 'अनुदात्तात्परः' न कह कर 'न चेदुदात्तात्पराः' कहा है।

अनुदात्त आदि परे 'र' का निर्देश इसलिए किया है कि

३ २ २
पाह्यू३त । पू० १।४।२॥

में उदात्त परे रहने पर 'ह्यू' पर 'र' का निर्देश न हो।

उदात्तपराः प्लवन्ते ॥५९॥

उदात्त स्वर परे है जिनसे ऐसे क्षैप्र-जात्य-प्रश्लेष-अभिनिहित स्वरित प्लुत होते हैं। यथा—

३ २ २
क्षैप्र—पाह्यू३त । पू० १।४।२॥

३ २ १ २
जात्य—दूत्यां३चरन् । पू० १।७।२॥

३ २ १ २
अभिनिहित—वृधे३ऽस्माँ अवन्तु । पू० ३।५।७॥

यहां प्रथम उदाहरण में 'ह्यू' स्वरित से परे 'त' उदात्त है, द्वितीय में 'त्या' से परे 'च' उदात्त है, तृतीय में 'धे' से परे 'स्मां' उदात्त है।

यहां सूत्र ५५ से '२' संख्या का निर्देश प्राप्त ही है, केवल प्लुतत्व का विधान इस सूत्र से किया है।

विशेष—(१) प्लुतसंज्ञक स्वर का निर्देश '३' संख्या से किया जाता है और '३' संख्या से पूर्व प्लुत वर्ण ह्रस्व अथवा दीर्घ दोनों रूप से लिखा जाता है। यथा—पाह्यु३त, पाह्यू३त; दूत्यां३चरन्, दूत्यं३चरन्। ह्रस्व अकार जहां प्लुत होता है और ह्रस्व से आगे '३' का संकेत होता है, वहां मूर्ख लोग प्लुत अकार का उच्चारण भी संवृत प्रयत्न से करते हैं। शिक्षा-शास्त्र के अनुसार प्लुत अकार का विवृत प्रयत्न से उच्चारण होना चाहिए। इसलिए हमने स्वसम्पादित, सं० २००४ में वैदिक यन्त्रालय अजमेर प्रकाशित सामवेद की षष्ठावृत्ति में प्लुत स्वर का निर्देश सर्वत्र दीर्घस्वर से दर्शाया है।

(२) 'उदात्तपराः प्लवन्ते' नियम हमने लिखित तथा मुद्रित पुस्तकों के अनुसार लिखा है।[1] हमें सन्देह है कि सामसंहिता में जिन क्षैप्र आदि स्वरितों के आगे ३ का अङ्कन है, वह प्लुतत्व के लिए है। सामसंहिता में जहां-जहां क्षैप्रादि से आगे ३ का उल्लेख है उन मन्त्रों के पाठ की ऋक् और अथर्व पाठ से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि यह ३ का अङ्क प्लुतत्व के लिए नहीं है, अपितु कम्प के लिए है। देखिए सूत्र १४, १५ के उदाहरण। केवल भेद इतना ही है कि ऋग् और अथर्व में ह्रस्व से परे १ तथा दीर्घ से परे ३ का अङ्कन होता है। परन्तु ऋग्वेद के कश्मीर पाठ में ह्रस्व क्षैप्रादि से आगे भी ३ का ही निर्देश मिलता है। देखिए सूत्र २० के उदाहरण। मैत्रायणी संहिता में भी ह्रस्व क्षैप्रादि का ३ से निर्देश किया जाता है, परन्तु उसमें '३' की संख्या क्षैप्र आदि से पूर्व लिखी जाती है। देखिए सूत्र ४८ के उदाहरण। कपिष्ठलकठ में क्षैप्रादि से परे अथवा पूर्व १ या ३ का निर्देश तो नहीं मिलता, परन्तु उसमें ह्रस्व, क्षैप्र अथवा जात्य को दीर्घ रूप से लिखा जाता है। देखिए सूत्र ३३ की व्याख्या।

इन सब नियमों को दृष्टि में रखते हुए हमारा विचार है कि उदात्त परे

---

१. श्री पं० विश्वबन्धु जी ने भी इस '३' संख्या को प्लुतत्व के लिये ही माना है। द्र० वैदिक पदानुक्रम कोष, संहिता भाग, खण्ड १, भूमिका पृष्ठ १२०।

रहने पर क्षैप्र आदि से परे जो ३ का अंक है, वह प्लुतत्व के ज्ञापन के लिए नहीं हैं, अपितु कम्प-निदर्शनार्थ है। कम्प होने पर ह्रस्व भी दीर्घवत् प्रतीत होता है, अतः ऋग्वेद के कश्मीर-पाठ में मैत्रायणी संहिता में और सामसंहिता में ह्रस्व से परे भी ३ का ही अंक लिखने की परिपाटी है। सम्भव है इसी कारण कपिष्ठलकठ संहिता में तथा सामसंहिता में ह्रस्व, क्षैप्र और जात्य को दीर्घ भी लिखा जाता है।

उदात्तपूर्वाश्चेदनङ्किताः ॥६०॥

पूर्व सूत्र से प्लुत किए क्षैप्र, जात्य, प्रश्लेष और अभिनिहित स्वरितों से पूर्व उदात्त स्वर हो तो वे बिना अङ्कन के ही रहते हैं, अर्थात् उन पर पूर्व सूत्र ५५ से प्राप्त '२' संख्या का अङ्कन नहीं किया जाता। यथा—

२ ३ ३ २ १ २

त्वं ह्या ३ ङ्गे। पू० ६।९।६॥ ऊर्जे व्या ३ व्ययं०।

उ० ६ (३)। १।४॥

३ २ २

विद्धी त्वा ३ स्य। पू० २।४।८॥

यहां क्रमशः 'ह्या-व्या-त्वा' से पूर्व 'त्वं-र्जे-द्धी' उदात्त हैं और परे भी 'ङ्गे-व्य-स्य' उदात्त हैं।

अनुदात्तस्त्र्यङ्केन ॥६१॥

सामसंहिता में अनुदात्त स्वर का निर्देश '३' संख्या से किया जाता है। यथा—

२ ३ १ २

अग्न आ याहि। पू० १।१।१॥

यहां 'ग्न' अनुदात्त है। अनुदात्त का अधिकार ६२ तक है।

अनेकानुदात्तत्व आद्य एव ॥६२॥

एक साथ अनेक अनुदात्त उपस्थित हों तो उनमें प्रथम अनुदात्त पर ही '३' अङ्कन किया जाता है। यथा—

३ १ २ ३ १ २

दूरेदृशं गृहपतिम्॥ पू० १।७।१०॥

यहां 'दूरेदृशं' में 'दू-रे' दोनों अनुदात्त हैं। अतः इनमें प्रथम 'दू' पर ३ का चिह्न है, 'रे' पर नहीं।

सरेफक्षैप्रजात्यप्रश्लेषेषु सकारेण ॥६३॥

रेफ सहित २ संख्या से निर्दिष्ट (सूत्र ५७) क्षैप्र, जात्य और प्रश्लेष स्वरितों के परे रहने पर पूर्व का अनुदात्त 'क' सहित ३ अंक से निर्दिष्ट होता है। यथा—

उक २र ३ २उ
क्षैप्र परे रहने पर—तन्वा गिरा०। पू० १।५।८॥

उक २र
जात्य परे रहने पर—मनुष्येभिः। पू० १।८।७॥

२ उक २ र
प्रश्लेष परे रहने पर—अधा हीन्द्र। पू० ५।२।८॥

सूत्र में 'सरेफ' विशेषण इसलिए दिया है कि—

उ २ २
पाह्यु३त। पू० १।४।२॥

यहां रेफविशिष्ट क्षैप्र स्वरित न होने से पूर्व अनुदात्त 'पा' पर 'क' का चिह्न नहीं किया जाता। क्षैप्र आदि का निर्देश इसलिए किया है कि—

उ १र २र १ २
पाहि विश्वस्या अरातेः। पू० १।१।६॥

यहां अनुदात्त 'पा' से परे रेफ सहित 'हि' तो है, परन्तु वह उदात्त है, क्षैप्र आदि स्वरित नहीं है।

एकश्रुतिरनङ्कित ॥६४॥

सामसंहिता में स्वरित से परे एकश्रुति स्वर पर कोई चिह्न नहीं होता। यथा—

२ उ १ २ उ २ उ १ २
अग्न आ याहि। पू० १।१।१॥ अग्निं दूतं वृणीमहे।
पू० १।१।३॥

यहां प्रथम उदाहरण में 'हि' एक तथा द्वितीय उदाहरण में 'णी-म-हे' तीन एकश्रुति स्वर वाले हैं।

अथाथर्वणः ॥६५॥

यहां से आगे अथर्वसंहिता के स्वराङ्कन-प्रकारों का निर्देश करेंगे।

अथर्व की ९ संहिताओं में से इस समय शौनकीय और पैप्पलाद दो संहिताएं ही उपलब्ध होती हैं। उनमें से

शौनकस्य तावत् ॥६६॥

पहले शौनक पाठ के स्वराङ्कन-प्रकार का निर्देश किया जाता है।

उदात्तानुदात्तसाधारणस्वरिता ऋग्वेदवत् ॥६७॥

शौनक संहिता में उदात्त, अनुदात्त और साधारण स्वरित स्वरों का निर्देश ऋग्वेद के समान समझना चाहिए।

जात्यक्षैप्रप्रश्लेषाभिनिहिता अग्रे ∫ रेखया ॥६८॥

जात्य, क्षैप्र, प्रश्लेष और अभिनिहित स्वरितों का निर्देश स्वरित वर्ण के आगे ∫ ऐसे चिह्न से किया जाता है। यथा—

जात्य—दृ॒र्शय॑ यातुधा॒न्य∫ः। ४।२०।६॥
वज्रं॑ स्व॒र्य∫ ततक्ष। २।५।६॥

क्षैप्र—त॒न्वो∫अ॒द्य। १।१ १॥
स्व॒स्त्ये∫नं ज॒रसे॑। १।३०।२॥

प्रश्लेष—नी∫ त॑ ए॒व। ३।११।२॥

अभिनिहित—ये∫ स्या॒ दोहमुपासते। ५।१७।१७॥
दि॒शो∫ऽभि॒दासन्त्यस्मान्। ४।४०।१॥

विशेष—राथ व्हिटनी द्वारा संपादित शौनक पाठ तथा लिंडनो द्वारा उसके पुनः परिष्कृत संस्करण में जात्यादि स्वरितों पर भी ऋग्वेद के समान ∫ ऊर्ध्व

---

१. शंकर पाण्डुरंग के संस्करण में यहां नीत ऐसा ही पाठ है। विशेष द्रष्टव्य पृष्ठ १९७।

रेखा का चिह्न ही व्यवहृत है। राथ ब्हिटनी के संस्करण के आधार पर मुद्रित कतिपय भारतीय संस्करणों[1] में भी यही संकेत उपलब्ध होता है।

विशेष—श्री पं० विश्वबन्धु जी ने अथर्ववेदीय स्वरित स्वर के संकेत के विषय में लिखा है—

शौनकीयेऽथर्ववेदे स्वरितादुपरि ⌠ इति संकेतो भवति, तय वीर्य ⌠ म्, सर्वाह्य ⌠ स्मिन् (११।८।१) ज्यष्ठवरो ⌠ ऽभवत् (११।८।१)। उदात्तादुपरितनः स्वरितस्तु बाह्वृचवत् साधारणेनोर्ध्व-दण्डेनैव संकेत्यते, तय तं व्यूर्णुवन्तु सूतवे (१।११।२)[2]।

अर्थात्—शौनक अथर्ववेद में स्वरित से आगे ऐसा संकेत होता है। यथा—

वीर्य⌠, सर्वाह्य⌠स्मिन् (११।८।३२)।

ज्येष्ठवरो⌠भवत् (११।८।१)।

उदात्त से अगला स्वरित ऋग्वेद के समान खड़ी रेखा से ही संकेतित किया जाता है। यथा—

त व्यूर्णुवन्तु सूतवे (१।११।२)

दो भूलें—श्री पण्डित जी के लेख में यहां दो भूलें हैं।

प्रथम—उदात्त से परे अनुदात्त को जो स्वरित होता है, उसका निर्देश अथर्ववेद में सर्वत्र ⌊ ऐसी ऊर्ध्वरेखा से ही किया जाता है। उसका निर्देश श्री पण्डित जी ने नहीं किया। ⌠ चिह्न से निर्देश तो क्षैप्र, जात्य, प्रश्लेष और अभिनिहित स्वरित का ही किया जाता है, न कि साधारण स्वरित का।

द्वितीय—श्री पण्डित जी ने अथर्व १।११।२ का पाठ उद्धृत करके दर्शाया है कि उदात्त से परे जो स्वरित होता है, उस का संकेत ⌠ चिह्न से न करके

---

१. हमारे द्वारा सम्पादित षष्ठ संस्करण (सं० २००१) से पूर्व वैदिक यन्त्रालय अजमेर से जितने संस्करण छपे थे, उनमें क्षैप्रादि स्वरितों पर भी ऐसा ⌊ चिह्न ही था॥

२. वैदिक पदानुक्रम कोष, संहिता भाग, खण्ड १, भूमिका पृष्ठ ११९॥

ऋग्वेद के | ऊर्ध्व रेखा से किया जाता है। यह भी पूर्णतया सत्य नहीं है। अथर्ववेद में अधिकांश रूप में उदात्त से परे क्षैप्र आदि स्वरितों में भी ⌠ चिह्न ही उपलब्ध होता है। यथा—

अग्निर्हेषां दूतः । ३।१।२॥

०आरण्यैर्व्या ⌠प०। ३।३१।३॥

दिवस्पृष्ठं स्व ⌠र्गत्वा । ४।१४।२॥

लोकं स्व ⌠रारोहन्तो० । ४।१४।६॥

इस प्रकार के अनेक ऐसे पाठ हैं, जिनमें उदात्त से परे भी क्षैप्र आदि का ⌠ चिह्न से ही संकेत है। शङ्कर पाण्डुरंग के संस्करण में इन पर कोई पाठान्तर निर्दिष्ट नहीं है।

कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहां दोनों प्रकार के पाठ है। यथा—

देवाः स्व⌠रारुहुः । ४।६।६॥ पाठान्तर—देवाः स्वरा० ।

विद्वा व्यो⌠षया० । ३।२६।४॥ पाठान्तर—विद्वा व्योषया ।

इन में द्वितीय उद्धरण का पाठान्तर--निर्दिष्ट स्वर अशुद्ध है। स्वरित का चिह्न 'व्यो' पर होना चाहिए।

अथर्ववेद के कई स्थल ऐसे भी हैं जहां शंकर पाण्डुरंग ने उसके सम्पूर्ण हस्तलेखों में उदात्त से परे क्षैप्र आदि स्वरित का | उर्ध्व रेखा से संकेत होने पर भी मन्त्र पाठ में उसने ⌠ का ही संकेत किया है। यथा—

तत्रं सेदिर्न्यु ⌠च्यतु० २।१४।३॥

हां, अति स्वल्प स्थान ऐसे हैं जहां उदात्त से परे क्षैप्र आदि स्वरित का निर्देश हस्तलेखों में केवल | ऊर्ध्व दण्ड से ही किया है। शंकर पाण्डुरङ्ग ने

तं यूर्व्णुवन्तु० । १।११।२॥ सूषा व्यूर्णोतु वि । १।११।३॥

ऐसे कतिपय स्थानों पर उदात्त से परे विद्यमान क्षैप्र आदि स्वरित का ऊर्ध्वदण्ड से निर्देश किया है।

हमारा संस्करण—अजमेर वैदिक यन्त्रालय से सं० २००१ में अथर्ववेद का छठा संस्करण प्रकाशित हुआ है, वह हमारे द्वारा परिष्कृत है। हमने हस्तलेखों में उदात्त से उत्तरवर्ती क्षैप्र आदि स्वरितों के विषय में कहीं-कहीं विप्रतिपत्ति देखकर भूमा-न्याय से सर्वत्र समान रूप से ∫ चिह्न से ही संकेत किया है।

उदात्तपराः कम्पन्ते, ऋग्वेदवच्चाङ्क्यन्ते ॥६९॥

उदात्त परे रहने पर क्षैप्र आदि स्वरित कम्प को प्राप्त होते हैं और ऋग्वेद के समान ही ह्रस्व से परे १ संख्या तथा दीर्घ ३ संख्या से अङ्कित होते हैं। यथा—

क्षैप्र—तन्वं १ पादौ। ६।९।१॥

तन्वा ३ सं बलेन। ५।३०।१४॥

जात्य—यदाद्यं १ यदनाद्यम्। ८।२।१९॥

या रोहिणीर्देवत्या ३ गावो वा। १।२२।३॥

अभिनिहित—न ब्राह्मणो हिंसितव्यो ३ऽग्निः। ५।१८।६॥

अथ पैप्पलादस्य ॥७०॥

अब अथर्ववेद के पैप्पलाद पाठ के स्वराङ्कन का प्रकार लिखते हैं।

विशेष—पैप्पलाद का स्वराङ्कन-प्रकार श्री पं० विश्वबन्धु जी के निर्देशानुसार लिखा है।

उदात्तः शीर्षस्थोर्ध्वरेखया ॥७१॥

पैप्पलाद पाठ में उदात्त का संकेत ऊपर खड़ी रेखा से किया जाता है। यथा—

शिवा शग्व्या यो। १४।२।७॥ तन्वा शन्तमया। १४।२।८॥

इनमें क्रमशः 'या-श' ये उदात्त हैं।

अनुदात्तोऽधस्तादूर्ध्वदण्डेन ॥७२॥

अनुदात्त का निर्देश वर्ण के नीचे खड़े दण्ड से किया जाता है। इसके लिए देखिए पूर्वनिर्दिष्ट द्वितीय उदाहरण में 'तन्वा' का 'त'।

सामान्यस्वरितोऽधस्ताद् बिन्दुना ॥७३॥

सामान्य स्वरित (उदात्त से परे जो अनुदात्त को स्वरित होता है) का निर्देश वर्ण के नीचे बिन्दु लगाकर किया जाता है। यथा—

कामो दाता । १।३०।६॥ शन्तमया । १४।२।८॥

क्षैप्रादयो वक्ररेखया ॥७४॥

क्षैप्र आदि स्वरित वर्ण के नीचे वक्ररेखा से अङ्कित किए जाते हैं। यथा—

क्षैप्र—तन्वा शन्तमया । १४।२।८॥

जात्य—जिह्वाया आस्याय च । १६।१०४।६॥

शिवा शरव्या या । १४।२।७॥

क्षैप्रादिभ्यः परः प्रथमैकश्रुतिरधोबिन्दुना ॥७५॥

क्षैप्र आदि स्वरित से परे जितने वर्ण एकश्रुति स्वर वाले हैं, उनमें प्रथम के नीचे बिन्दु लगाया जाता है। यथा—

जिह्वाया आस्याय च । १६।१०४।६॥

विशेष—पैप्पलाद पाठ के स्वराङ्कन-प्रकार काठक संहिता के स्वराङ्कन-प्रकार से उदात्त, अनुदात्त, सामान्य स्वरित और क्षैप्र आदि स्वरितों के विषय में पूर्णतया समानता रखते हैं। दोनों में केवल इतना भेद है—काठक में क्षैप्रादि की ॥, ७ चिह्नों से व्यवस्थित रूप से अंकन होता है और पैप्पलाद में सर्वत्र चिह्न ⌐ से। दोनों संहिताओं का पुराकाल में कश्मीर में विशेष पठन-पाठन होता था। सम्भवतः इसी कारण दोनों के स्वराङ्कन-प्रकार में अत्यधिक सादृश्य है॥

अथ ब्राह्मणानाम् ॥७६॥

यहाँ से आगे ब्राह्मण ग्रन्थों के स्वराङ्कन-प्रकार का निर्देश करेंगे।

माध्यन्दिनशतपथस्य तावत् ॥७७॥

प्रथम माध्यन्दिन शतपथ के स्वराङ्कन प्रकार का निर्देश करेंगे।

विशेष—हमने माध्यन्दिन शतपथ के स्वराङ्कन-प्रकार का निर्देश प्रधानतया

वैदिक यन्त्रालय अजमेर मुद्रित संस्करण के अनुसार किया है। वेबर और अच्युत ग्रन्थमाला काशी के संस्करणों में कहीं कहीं स्वल्प भेद है।

उदात्तोऽधःसरलरेखया ॥७८॥

माध्यन्दिन पाठ में उदात्तस्वर का निर्देश नीचे सीधी रेखा से किया जाता है।[1] यथा—

अथ सꣳस्थिते विसृजते। १।१।१।२॥

यहां 'अ-सं-वि' उदात्त हैं।

विशेष—अजमेर मुद्रित संस्करण के आरम्भ के कुछ भाग में उदात्त से परे श्रूयमाण ꣳ के नीचे रेखा का प्रयोग नहीं किया है, आगे सर्वत्र है। इस नियम का उल्लेख हमने सूत्र ८० में किया है।

द्वयोर्बहूनां वाऽन्त्य एव ॥७९॥

जहां दो अथवा बहुत उदात्त एक साथ प्रयुक्त होते हैं, वहां अन्त्य ही सीधी रेखा से अङ्कित किया जाता है। यथा—

दो में—व्रतमुपायानीति। १।१।१।१॥

त उत्तरस्य। ४।६।९।११॥

प्रथम उदाहरण में 'त-मु' दो उदात्त हैं, दूसरे में 'त-उ'। दोनों में पूर्व उदात्त पर कोई चिह्न नहीं है, द्वितीय पर है।

बहुतों में—अग्निर्ह वै धूरथ। १।१।२।९॥

यहां 'ग्नि-र्ह-वै-धू-र' ये पांच उदात्त हैं। इनमें प्रथम चार पर कोई चिह्न नहीं, अन्तिम 'र' पर चिह्न लगाया जाता है।

---

१. शतपथ के स्वर-ज्ञान के लिए एक 'भाषिक सूत्र' नामक शु० यजुःप्रातिशाख्य का परिशिष्ट मिलता है। यह कात्यायन-प्रोक्त माना जाता है। इस पर अनन्त भट्ट की टीका भी छपी है। यह परिशिष्ट काशी से प्रकाशित शु० य० प्रातिशाख्य के अन्त में ४३२–४७० तक छपा है। इसमें शतपथ में स्वर-चिह्न-रहित लिखे जाने वाले स्वरित और अनुदात्तों को उदात्त बना दिया है (द्र० सूत्र १३, १४) और उदात्त को अनुदात्त (द्र० सूत्र १५)। यह शास्त्र विरुद्ध होने से चिन्त्य है। इस हेतु से हमें इस भाषिक सूत्र की कात्यायन-प्रोक्तता में सन्देह होता है॥

उदात्तात् परस्यानुस्वारस्य श्ँ ऱँ संकेतावपि ॥८०॥

उदात्त से परे जिस अनुस्वार को 'ऊष्म' और 'र' वर्ण परे रहने पर श्ँ वा ऱँ संकेत से लिखा जाता है, वह भी सीधी रेखा से अङ्कित किया जाता है। यथा—

यत्पञ्चम ऱँ स्रुचा। ३।१।४।२॥

यदमेध्य श्ँ रिप्रं०। ३।१।२।११॥

विशेष—(१) शतपथ के किसी संस्करण में श्ँ संकेत उपलब्ध होता है और किसी में ऱँ। संहिता में दोनों ही संकेत ह्रस्वपूर्व और दीर्घपूर्व की व्यवस्था से व्यवस्थित हैं।

(२) श्री पं० विश्वबन्धु जी ने इस नियम का उल्लेख करते हुए लिखा है—

अङ्कितस्य सत उदात्तस्य अनुनासिकतां प्राप्तावनुनासिकचिह्नमप्यधो रेख्यते.....।[1]

अर्थात्—अधोरेखा से अङ्कित उदात्त के अनुनासिक होने पर अनुनासिक का चिह्न (ऱँ) भी अधोरेखा से चिह्नित किया जाता है।

आलोचना—यहां श्री पण्डित जी ने ऱँ (वा श्ँ) को अनुनासिक का चिह्न लिखा है। उन्हें यह भ्रान्ति काण्व शतपथ के सम्पादक कैलेण्ड के लेख से हुई है।[2] 'शत ऱँ शत ऱँ ह' अथवा 'मेध्य श्ँ रिप्रम्' आदि में 'शतम्-मेध्यम्' के मकार को मोऽनुस्वारः (अ० ८।३।२४) से अनुस्वार होना ही सम्भव है और उसी अनुस्वार का ऊष्म और र परे यजुर्वेद में श्ँ अथवा ऱँ से निर्देश किया जाता है (द्र० याज्ञ० शिक्षा)। यहां मकार के लोप और उससे पूर्ववर्ती अकार के अनुनासिकत्व की कल्पना न केवल शास्त्रविरुद्ध है, अपितु प्रयोगविरुद्ध भी है। कोई भी वैदिक ऱँ अथवा श्ँ से पूर्ववर्ती स्वर को अनुनासिक नहीं पढ़ता।

हमारा विचार—इस विषय में हमारा विचार है कि शुक्ल यजु० में सर्वत्र पदान्त में भी अनुस्वार को नियमतः परसवर्ण ही होता है (द्वित्वादि रहित

---

१. वैदिक-पदानुक्रम-कोष, संहिता भाग, खण्ड १, भूमिका पृष्ठ १२२॥

२. कैलेण्ड ने काण्व शतपथ की भूमिका में ऱँ चिह्न को अनुनासिक का चिह्न कहा है।

मुद्रित योरोपीय तथा उनके आधार पर छपे भारतीय संस्करणों में जो अनुस्वार पाठ मिला है वह सम्प्रदाय विरुद्ध है)। केवल र श ष स ह के परे इनके सवर्ण सानुनासिकवर्ण के अभाव के कारण परसवर्ण नहीं होता। इसलिए शुक्ल-यजुः में प्रयुक्त ँ ꣳ चिह्न अनुस्वार के ही हैं। उच्चारण भेद से दो चिह्न कल्पित किए गये हैं।

विरामात् पूर्वोऽव्यवहित एकव्यवहितश्च द्वाभ्यां त्रिभिर्वा बिन्दुभिः, विरामाच्चेदुत्तर उदात्तः स्यात् ॥८१॥

विराम से अव्यवहित पूर्ववर्ती अथवा एक वर्ण से व्यवहित उदात्त दो अथवा तीन[1] बिन्दुओं से निर्दिष्ट किया जाता है, यदि विराम से उत्तरवर्ती वर्ण उदात्त हो। यथा—

अव्यवहित—द्वित एकतः ॥१॥ [वैबर—···त]
त इन्द्रेण·····॥ ॥२॥ [१।२।३।१, २]
मानुऽषेथैवं देवत्रा[2] ॥७॥ [वैबर—···त्रा]
स युनक्ति···॥८॥ [५।१।४।७,८]

यहां प्रथम उदाहरण में विराम से पूर्व 'त' उदात्त है, उससे आगे 'त–इ' दो उदात्त हैं। इनमें प्रथम पर सूत्र ७८ के अनुसार चिह्न नहीं किया गया। द्वितीय उदाहरण में विराम से पूर्व 'त्रा' उदात्त है, उससे परे 'स' उदात्त है।

---

१. वैदिक यन्त्रालय अजमेर के संस्करण में दो बिन्दुओं से निर्देश किया जाता है, और वैबर के संस्करण में तीन बिन्दुओं से।

२. इस पर श्री पं० विश्वबन्धु जी ने टिप्पण लिखा है—"Web. तावदेषा स्थिति-र्द्वाभ्यामर्धाबिन्दुत्रिकाभ्यां संकेत्यते।" अर्थात्—वैबर ने इसका संकेत वर्ण के नीचे बिन्दुओं के दो त्रिकों ::: से किया है। वै० पदा० कोष, संहिता भाग, खण्ड १ भूमिका, पृष्ठ १२२॥

यह टिप्पण स्थिति के विपरीत है। वैबर के संस्करण में भी 'त्रा' के नीचे केवल तीन बिन्दु ही हैं, दो त्रिक ::: नहीं। अतः या तो लेख प्रमादवश लिखा गया है अथवा अस्थान में यह टिप्पण संकेतित हो गया है। यदि पृष्ठ १२२ के नियम ८ और ९ पर दिया जाय तो युक्त है।

व्यवहित—पृदाकुरिति ॥३॥ अथ····॥४॥ [४।४।५,३,४]

यदपक्षीयते ॥१५॥ अथ यत्····॥१६॥ [२।४।४।१५,१६]

वैबर—····रिति ॥ ····यते ॥

यहां विराम से पूर्व 'ति' अनुदात्त और उससे पूर्व 'रि' उदात्त है। दूसरे विराम से पूर्ववर्ती 'ते' अनुदात्त और 'य' उदात्त है। दोनों में विराम से आगे 'अ' उदात्त है।

विशेष—वैदिक यन्त्रालय के संस्करण में जहां दो बिन्दुओं का और वैबर के संस्करण में तीन बिन्दुओं का निर्देश मिलता है, वहां अच्युत ग्रन्थमाला काशी के संस्करण में कोई चिह्न नहीं है।

सूत्र में विरामाच्चेदुत्तर उदात्तः इसलिये ग्रहण किया है कि जहां विराम से आगे अनुदात्त वर्ण होता है, वहां विराम से पूर्ववर्ती अव्यवहित अथवा व्यवहित उदात्त का निर्देश नीचे सीधी रेखा से ही किया जाता है।

विशेष—श्री पं० विश्वबन्धु जी ने शतपथ-स्वर-संकेत-प्रकरण के संख्या ७ के नियम में लिखा है।

कण्डिकाब्राह्मणान्यतरावसानीय उदात्तः कण्डिकाब्राह्मणान्यतराद्य उदात्ते परतस्त्रिभिरधोबिन्दुभिः संकेत्यते।[1]

अर्थात्—कण्डिका तथा ब्राह्मण के अवसान (विराम) में वर्तमान उदात्त, अन्य कण्डिका वा ब्राह्मण के आदि उदात्त के परे रहने पर नीचे तीन बिन्दुओं से अङ्कित होता है।

नियम में न्यूनता—श्री पं० जी के उक्त नियम में दो न्यूनताएं हैं।

१—केवल अवसान में वर्तमान उदात्त ही नहीं, अपितु अवसान में वर्तमान वर्ण से पूर्व विद्यमान उदात्त भी दो वा तीन बिन्दुओं से अङ्कित किया जाता है। देखिए—सूत्र ८१ के हमारे द्वारा उद्धृत 'व्यवहित' के उदाहरण।

२—श्री पण्डित जी ने केवल कण्डिका अथवा ब्राह्मण के अवसान में वर्तमान उदात्त का ही तीन बिन्दुओं से निर्देश करना लिखा है, परन्तु कण्डिका के मध्य में वर्तमान अवसान (विराम) से पूर्ववर्ती (व्यवहित अथवा अव्यवहित)

---

१. वै० पदा० कोष, संहिताभाग, खण्ड १, भूमिका पृष्ठ १२२।

उदात्त का भी दो वा तीन बिन्दुओं से निर्देश उपलब्ध होता है। यथा—

यदग्निः[1] । तस्मात् । ६।२।१।१२॥

वा एताः[1] । षडाहुतयः । ४।४।५।१८॥

यहां द्वितीय उदाहरण में विराम से उत्तर 'ष-डा' दोनों उदात्त हैं (सूत्र ७९)।

हमने इसी सूक्ष्मता को ध्यान में रखकर सूत्र ८१ में केवल विरामात् पूर्वः इतना सामान्य वचन ही पढ़ा है। वह विराम चाहे कण्डिका के अन्त में हो अथवा मध्य में, दोनों का ही सामान्य रूप से ग्रहण हो जाता है।

सूत्र में हमने एकव्यवहितः में एक पद इसलिए पढ़ा है कि जहां एक से अधिक का व्यवधान हो वहां व्यवहित पूर्व उदात्त का संकेत दो अथवा तीन बिन्दुओं से नहीं होता। यथा—

व्रतमुपैष्यन् । अन्तरेणा..... । १।१।१।१॥

यहां मुपैष्य तीन वर्णों का व्यवधान होने से उदात्त त का निर्देश केवल सीधी रेखा से किया है।

इस विवेचना से सिद्ध है कि हमारा सूत्र ८१ का नियम पं० विश्वबन्धु के नियम की अपेक्षा दोष रहित है।

आलोचनीय—(१) शतपथ ९।२।३।२५ के अजमेर संस्करण में पाठ है।

तद्विश्वैर्देवैः सह यजमानः... ।

यहां 'वै' के नीचे दो बिन्दुओं का निर्देश है। न यहां विराम आगे है और न उदात्त। 'सह' अन्तोदात्त होता है। अतः यहां अनुदात्त 'स' परे है। अतः यहां मुद्रण दोष है। वेङ्कटेश्वर, वैबर तथा अच्युत ग्रन्थमाला के संस्करणों में सर्वत्र वै ऐसा पाठ ही है।

(२) शतपथ (अजमेर सं०) के कतिपय पाठ हैं—

---

१. वैबर के संस्करण में यहां तीन बिन्दु हैं। अच्युत ग्रन्थमाला के संस्करण में कोई चिह्न नहीं है।

पुमाꣳ समुपशेते ॥२०॥ ता नान्तरेण···॥२१॥

[१।१।१।२०,२१]

तस्माद् वृत्रो नाम ॥४॥ तमिन्द्रो···॥५॥

[१।१।३।४,५]

भवितोरिति ॥९॥ तदु वै यजेतैव[1] ···॥१०॥

[५।१।१।९,१०]

लोकेषु दिशः ॥१३॥ बाह्येनाग्नि···॥१४॥

[७।३।१।१३,१४]

इत्यादि अनेक स्थानों में उदात्त का निर्देश दो बिन्दुओं से न करके सीधी रेखा से उपलब्ध होता है। अतः हमारा नियम भी अभी सामान्य अवस्था में ही है। इस विषय के सूक्ष्मतर नियम ज्ञातव्य हैं।

जात्यादिपरे च ॥८२॥

विराम से जात्य, अभिनिहित स्वरित परे रहने पर भी विराम से अव्यवहित अथवा व्यवहित पूर्ववर्ती उदात्त भी दो वा तीन बिन्दुओं से अङ्कित किया जाता है। यथा—

जात्य वा क्षैप्र—[2] ०मित्येतत् ॥२६॥ स्वर्यन्तो··· ॥२७॥

[९।२।३।२६,२७]

अभिनिहित——प्रतिप्रस्थाता ॥१३॥ सोऽध्वर्युः···॥१४॥

[४।२।१।१३,१४]

वैबर—०मित्येतत्। प्रतिप्रस्थाताः।

अच्युतग्रन्थ०—०मित्येतद्। प्रतिप्रस्थाता।

---

१. वैबर 'ब' अच्युत ग्रन्थमाला 'व' पाठ है।

२. द्रष्टव्य पूर्व पृष्ठ १३९ की टि० २।

वैबर जात्यादि पूर्ववर्ती उदात्त के नीचे सर्वत्र दो त्रिक ::: बिन्दुओं का निर्देश करता है।

अनुदात्तोऽपि ॥८३॥

विराम से आगे जात्य अथवा अभिनिहित स्वरित परे रहने पर विराम से पूर्ववर्ती अनुदात्त भी दो या तीन बिन्दुओं से अङ्कित किया जाता है। यथा—

न मामन्य इति ॥ तेऽ विदुः ।···॥८॥ [३।४।३।७,८]

वैबर—ति ॥ अच्युत०—ति ॥

यहां विराम से पूर्व 'ति' अनुदात्त है, उससे परे 'ते' अभिनिहित स्वरित है।

आवसानिकस्योदात्तस्योत्तरेणानुदात्तेन संहितायां स्वरितत्वसम्भवे तत्पूर्वम् ॥८४॥

विराम से पूर्ववर्ती उदात्त के साथ विराम से उत्तरवर्ती अनुदात्त के साथ [विराम हटाकर] संहिता=सन्धि करने पर यदि स्वरित स्वर की सम्भावना हो तो उस विराम से पूर्ववर्ती उदात्त से पूर्व जो अनुदात्त है, उसका भी दो अथवा तीन बिन्दुओं से निर्देश किया जाता है। यथा—

समवमृशन्त्येव । एतद्ध···३।४।२।१३॥

वैबर—न्त्ये । अच्युत०—न्त्ये । (चिह्नरहित)

यहां 'एव' का 'व' उदात्त है, उससे परे विराम से उत्तर 'ए' अनुदात्त है। उदात्त 'व' और अनुदात्त 'ए' के मध्य के विराम को हटा देने पर दोनों की सन्धि 'वै' स्वरित होगी [द्र० अष्टा० ८।२।६]। अतः यहां 'व' से पूर्ववर्ती अनुदात्त 'न्त्ये' के नीचे बिन्दु रखे हैं।

बिन्दुसंकेतितात् परौ ॥ संकेतावधोरेखयैव ॥८५॥

बिन्दुओं से संकेतित वर्ण से उत्तर ॥ अथवा नीचे सीधी रेखा से ही] अङ्कित किए जाते हैं। यथा—

पौष्णꣳ ॥१९॥ सैषा···॥२०॥ [३।१।४ १९, २०]

यहां उदात्त 'ष्ण' विराम से उत्तरवर्ती उदात्त 'सै' के परे सूत्र ८० से दो या तीन बिन्दुओं से निर्दिष्ट होता है। उससे परे ꣳ वा ꣳ के नीचे सीधी रेखा लगाई जाती है।

विशेष—श्री पं० विश्वबन्धु जी ने इस नियम का उल्लेख नहीं किया।

जात्यक्षैप्रप्रश्लेषाभिनिहिता अनङ्कितास्तत्पूर्वेऽनुदात्ता अधोरेखया ॥८६॥

जात्य, क्षैप्र, प्रश्लेष और अभिनिहित स्वरितों पर कोई चिह्न नहीं लगाया जाता, उनसे पूर्ववर्ती अनुदात्त के नीचे सीधी रेखा का चिह्न किया जाता है। यथा—

जात्य—धान्यमसि। १।२।१।१८ भूर्भुवः स्वः। २।४।१।१॥

क्षैप्र—उर्वन्तरिक्षम्। १।१।२।४॥

प्रश्लेष—दिवीव चक्षुराततम्। ३।७।१।१८॥

अभिनिहित—प्रसवेऽश्विनोः। १।१।२।१७॥

वेदोऽसि येन। १।९।२।२३॥

विशिष्ट निर्देश—त्रैबर अपने संस्करण में जात्यादि पूर्ववर्ती अनुदात्तों का निर्देश नीचे दो=सम रेखा से करता है। यथा—

धान्यमसि। भूर्भुवः स्वः। उर्वन्त०। दिवीव।
= = = =

प्रसवेऽश्विनोः। वेदोऽसि॥
= =

विशेष—इस सूत्र से दो कार्यों का विधान किया है। प्रथम—जात्यादि स्वरित के लिए संकेत के अभाव का। दूसरा—जात्यादि से पूर्ववर्ती अनुदात्त के नीचे सीधी रेखा के निर्देश का। इसलिए जहां जात्यादि स्वरित से पूर्व उदात्त होता है, वहां केवल जात्यादि स्वरित के अङ्कनाभाव का ही विधान समझना चाहिए।

वैबर की भूल—वैबर जात्यादि स्वरित से पूर्व वर्ण के नीचे प्रयुक्त रेखा को अग्रिम स्वरित का द्योतक चिह्न मानता है। अतः उदात्त और स्वरित पूर्व वर्ण के नीचे प्रयुक्त रेखा के भ्रम की निवृत्ति के लिए वह अपने संस्करण में जात्यादि स्वरित से पूर्व वर्ण के नीचे=दो सीधी रेखा प्रयुक्त करता है। जैसे उसने जात्यादि स्वरित पूर्ववर्त्ती उदात्त का उदात्तपरक उदात्त से भेद दर्शाने के लिए दो त्रिक बिन्दुओं : : : से निर्देश किया है। वस्तुतः जात्यादि स्वरित पूर्ववर्त्ती अधोरेखा अग्रिम स्वरित की द्योतक नहीं है, अपितु अनुदात्त की ही द्योतक है।

प्रश्लिष्ट स्वरित के परे रहने पर पूर्ववर्त्ती प्रश्लिष्ट स्वरित भी सीधी रेखा से अङ्कित किया है। यथा—

यविष्ठ्येति सैवैतमेव। १।४।१।२६॥

यहाँ 'ष्ठ्य-इ' दोनों उदात्तों की सन्धि 'ष्ठ्ये' उदात्त है। अतः उसके नीचे रेखा लगी है। उसके आगे 'ति' अनुदात्त है। उससे आगे उदात्त 'सा' और अनुदात्त 'ए' की प्रश्लिष्ट सन्धि 'सै' स्वरित है, उसके परे रहने पर पूर्वसूत्र ८६ से अनुदात्त 'ति' के नीचे रेखा लगाई जाती है। प्रश्लिष्ट स्वरित 'सै' से आगे उदात्त 'षा' और अनुदात्त 'ए' की प्रश्लिष्ट सन्धि 'षै' स्वरित है, उसके परे रहने पर पूर्व प्रश्लिष्ट स्वरित 'सै' के नीचे इस सूत्र (८६) से रेखा लगाने का निर्देश किया है। उत्तरवर्ती प्रश्लिष्ट स्वरित 'षै' सूत्र ८५ के नियमानुसार चिह्नरहित रहता है।

वैबर ने यहां 'ति' और 'सै' के नीचे दो सीधी=रेखाएं अंकित की हैं।

मन्त्रनिर्देशे पूर्वपादान्तोदात्तो विरामव्यवहितेऽप्युत्तर-पदस्थे स्वरे ॥८८॥

अनुवृत्ति—पूर्व सूत्र से 'अनङ्कित' पद की अनुवृत्ति आती है। अगले दो सूत्रों से भी उसका संबन्ध जानना चाहिए।

अर्थात्—शतपथ ब्राह्मण से मन्त्र का निर्देश (=पाठ) हो तो पूर्वपाद के अन्त्य उदात्त को अङ्कित नहीं किया जाता। चाहे विराम से व्यवहित भी उत्तरपद का कोई स्वर परे क्यों न हो।

सूत्र में 'स्वरे' सामान्य निर्देश है। उदात्त के परे पूर्व उदात्त अङ्कित नहीं होता यह तो पूर्व कह ही चुके, इसलिए यहां केवल अनुदात्त और स्वरित उत्तरपादादि के उदाहरण देते हैं। यथा—

० अवयाः । मह्ः० । २।५।२।२८॥

० प्रयत्यध्वरे । वृणीध्वं० । १।४।१।३९॥

० मर्ति कविम् । ऊर्ध्वाय० । ३।३।२।१२॥

० दशस्या । व्यस्कभ्ना रोदसी० । ३।५।३।१४॥

इनमें प्रथम दो उदाहरणों में क्रमशः या: रे पादान्त उदात्त हैं । म वृ उत्तरपादादि अनुदात्त हैं । तृतीय उदाहरण में वि पादान्त उदात्त है और ऊ पादादि उत्तरपादादि अनुदात्त । चतुर्थ उदाहरण में स्या पादान्त उदात्त हैं और व्य उत्तर-पादादि स्वरित ।

विशेष—(१) वैबर ने ऐसे स्थलों पर भी पूर्व नियमों के अनुसार उदात्तस्वर के विशिष्ट चिह्नों का प्रयोग किया है । यथा अनुदात्त पादादि के परे पूर्व या रे वि के नीचे सूत्र ८३ के अनुसार···तीन बिन्दुओं से निर्देश किया है और क्षैप्र स्वरित व्य परे रहने पर पूर्व पादान्त स्या के नीचे ::: दो त्रिक बिन्दुओं का (द्र० सूत्र ८२ की व्याख्या) ।

(२) अजमेर का संस्करण संभवतः वैबर संस्करण के आधार पर छपा है । अतः उसमें भी अपनी शैली के अनुसार इस प्रकार के स्थलों में—सीधी रेखा का निर्देश किया है ।

ब्राह्मणान्त्यं उदात्तश्च ॥८९॥

ब्राह्मण के अन्त में वर्तमान उदात्त भी किसी चिह्न से अङ्कित नहीं होता । यथा—

शतपथ—४।५।१।१६॥ ४।१।१।२८॥ आदि

विशेष—वैबर ने ब्राह्मण के अन्त्य उदात्त पर भी सर्वत्र उदात्त स्वर का संकेत किया है ।

इन दोनों (८८, ८९) सूत्रों से निर्दिष्ट विषयों में वैबर ने अपनी पद्धति के अनुसार जो स्वर-चिह्न दिए हैं, वे संभवतः उसकी स्वकल्पित प्रणाली के अनुसार ही हैं ।

शिष्टाः स्वरितानुदात्तैकश्रुतयश्च ॥९०॥

पूर्वनिर्दिष्ट स्वरों से भिन्न अनुदात्तभूमिक स्वरित, अनुदात्त और एकश्रुति स्वर चिह्नरहित प्रयुक्त होते हैं ।

माध्यन्दिनवत् प्रायेण काण्वे ॥९१॥

माध्यन्दिन शतपथ के स्वराङ्कन के समान ही काण्व शतपथ में भी प्रायः स्वराङ्कन है।

सूत्र में प्रायः पद का निर्देश इसलिए किया है कि कण्डिका के अन्त में वर्तमान उदात्त उत्तर कण्डिका के उदात्त वर्ण के परे रहने पर स्वरचिह्न से अङ्कित नहीं किया जाता। यथा—

एवैन्द्रो वाक् ॥ स जुहोति । काण्व शत० १।५।२।१७, १८॥
स्वाहेति ॥ अथ । काण्व शत० १।५।२।१८, १९॥

माध्यन्दिन शतपथ में वैबर के संस्करण में ... तीन बिन्दुओं और वैदिक यन्त्रालय के संस्करण में .. दो बिन्दुओं का निर्देश मिलता है। अच्युतग्रन्थमाला काशी के संस्करण में कोई चिह्न नहीं है।

तैत्तिरीयसंहितावत् तद्ब्राह्मणे ॥९२॥

तैत्तिरीय संहिता के समान ही उसके ब्राह्मण का स्वराङ्कन प्रकार है।

शतपथवत्ताण्डिभाल्लविबह्वृचां ब्राह्मणस्वर आसीत् ॥९३॥

पुराकाल में ताण्ड्य, भाल्लवि और बाह्वृच (ऋग्वेद के) ब्राह्मण में शतपथ के समान स्वर था।

इसका संकेत अनेक ग्रन्थों में मिलता है। यथा—

(१) भाषिकसूत्र कण्डिका ३ में लिखा है—

शतपथवत् ताण्डिभाल्लविनां ब्राह्मणस्वरः ॥ १५ ॥

(२) नारदीयशिक्षा १।१३ में कहा है—

द्वितीयप्रथमावेतौ ताण्डिभाल्लविनां स्वरौ ।
तथा शातपथावेतौ स्वरौ वाजसनेयिनाम् ॥

(३) शबरस्वामी मीमांसाभाष्य १२।३७ में भाषिक स्वर का लक्षण दर्शाता हुआ लिखता है—

छान्दोगा बाह्वृचाश्चैव तथा वाजसनेयिनः ।
उच्चनीचस्वरं प्राहुः स वै भाषिक उच्यते ॥

इन उद्धरणों में उल्लिखित ताण्ड्य और बाह्वृच (ऐतरेय अथवा कौषीतकि अथवा शांखायन) ब्राह्मणों पर सम्प्रति स्वरचिह्न उपलब्ध नहीं होते। पुराकाल में ये सस्वर थे, यह पूर्व प्रमाणों से स्पष्ट है। भाल्लवि ब्राह्मण चिरकाल से उत्सन्न हो चुका है।

बृहदारण्यकतैत्तिरीयारण्यकयोः स्वब्राह्मणवत् ॥९४॥

माध्यन्दिन और काण्व बृहदारण्यक तथा तैत्तिरीय आरण्यक का स्वराङ्कन-प्रकार उनके अपने ब्राह्मणों के समान ही है।

मैत्रायणीयारण्यक ऋग्वत् ॥९५॥

मैत्रायणीय आरण्यक में स्वराङ्कन प्रकार ऋग्वेद के समान है।

सकम्पोऽधोरेखया पुरस्तात् त्र्यङ्केन च ॥९६॥

कम्पयुक्त स्वरित नीचे सीधी रेखा से निर्दिष्ट किया जाता है और उससे पूर्व ३ का अंक लिखा जाता है। यथा—

भूर्भुवः ३स्वरित्युपासीतानेन ॥ ६।६॥
ब्रह्मचारिणो ३योऽयꣳ विष्णुः ॥ ८।२॥

विशेष— मैत्रायणीय आरण्यक का जो सस्वर पाठ श्री पण्डित सातवलेकर जी ने छापा है, वह एक हस्तलेख के आधार पर छापा है। इसलिए इस पाठ में अनेक स्थानों पर स्वरचिह्न व्यस्त हो रहे हैं। यथा—

स्वधर्मोऽभिहि३तो यो वेदेषु···। ४।३॥

यहां अभिहितो का ओकार उदात्त होना चाहिये, परन्तु यहां उसे अभिनिहित स्वरित मानकर अनुदात्त और उससे पूर्व ३ का अंक दिया है। अभिनिहित स्वरित होने पर अभिहितोऽयं पाठ होना चाहिये।

भूर्भुवः स्वरो ३मित्यष्टपादꣳ···। ६।३५॥

यहां पाठ अत्यन्त भ्रष्ट है। ओम् उदात्त है, इति आद्युदात्त होता है। अतः इस का शुद्ध पाठ इस प्रकार होगा—

भूर्भुवः ३स्वरोमित्यष्टपादꣳ···।
नमोऽग्नये पृथिवी ३क्षिते। ६।३५॥

यहां पृथिवी३क्षिते का स्वर और ३ का अङ्कन चिन्त्य है ।

काठकब्राह्मणे स्वसहितावत् ॥६७॥

काठक ब्राह्मण का जो उपलब्ध अंश डा० सूर्यकान्त जी ने लाहौर में छपवाया था उसमें कहीं-कहीं स्वर चिह्न उपलब्ध होते हैं । वे प्रायः काठक संहिता के समान हैं ।

भद्रोऽहिर्बुध्न्यो भुवनस्य रक्षिता ॥ ६०।७॥[1]

अन्तर्हिता ह्यमुष्मादादित्यात् पितरः ॥ ५९।१॥

देवेभ्यश्च मनुष्येभ्यश्च पितरः ॥ ५९।१॥

सा वा एषा सावित्र्येषां लोकानां प्रतिपत ॥ ५१।३॥

वीर्यं वै कर्म वीर्येण वा अन्नमद्यते ॥ ५०।२॥

तेऽब्रुवन् ॥५७।१॥

एवमिव हि तेऽन्तर्हिता भवन्ति ॥ ५९।३॥

उभये हीज्यन्ते ॥ ५९।२॥

प्राणो व्यानोऽपानः ॥ ५२।३॥

सोऽब्रवीत् ॥ ५५।१॥

हस्तौ वै भूत्वा स्वर्भानुरमुमादित्यं छायया ऽभ्य-
ऽ ऽ
भवत् ॥ ५६।१॥

तस्मादुभौ यष्टव्यौ ॥५६।७॥
ऽ

इत्यादि ।

---

१. काठक ब्राह्मण के पत्रों में पहली संख्या पृष्ठ की है और दूसरी पंक्ति की ।

शिष्टं वाङ्मयमनङ्कितम् ॥९८॥

शेष वाङ्मय स्वर-चिह्नों से रहित है ।

¤¤

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणज्ञानां वैयाकरणमूर्धन्यानां पण्डित-
शङ्करदेवपादानामन्तेवासिना लब्धस्वरशास्त्रबंधु-
ध्येन युधिष्ठिरमीमांसकेन मीमांसिता
वैदिक-स्वर-मीमांसा
सम्पूर्णा ॥

शुभं भवतु